

प्रेक्षाध्यान स्वर साधना



साध्वी रमाकुमारी

जीवन विज्ञान ग्रन्थमाला—१७

प्रेक्षा-ध्यान : स्वर साधना

साध्वी रमाकुमारी

जैन विश्व भारती
लाडनू (राजस्थान)

जीवन-विज्ञान ग्रन्थमाला—१७

प्रकाशक : जैन विश्व भारती

लाडनू - ३४१३०६ (राजस्थान)

© जैन विश्व भारती, लाडनू

नवीन संस्करण : 2004

ISBN No. 81-7195-017-5

मूल्य : १५ रु०

मुद्रक : सन्मति प्रिंटिंग सर्विसेज, शाहदरा, दिल्ली-32

समर्पण

महापुरुष-प्रमाण
ज्योतिर्धाम
जिनका चिंतन
है अभिराम
स्वर-साधना
प्रेक्षा-ध्यान
कृति-ललाम
स्वल्प समय में
सफल हुआ, प्रभु
आशिर्वर से
लक्षित काम ॥

— साध्वी रमाकुमारी

आशीर्वचन

स्वर-विद्या भारतीय रहस्य विद्याओं का एक प्रमुख अंग है। इसका साधनात्मक मूल्य भी रहा है और लौकिक मूल्य भी। कार्य-सिद्धि और भविष्य ज्ञान की यह एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। प्रकृति के साथ इसका गहरा सम्बन्ध है।

लेश्या-ध्यान को समझने के लिए भी यह एक महत्वपूर्ण उपाय है। इस विषय में सैद्धांतिक जानकारी कुछ-कुछ मिलती है, लेकिन अनुभवी लोग बहुत कम हैं। साध्वी रमाकुमारी ने अभ्यास के द्वारा इस विषय को हस्तगत किया है।

प्रस्तुत पुस्तक में कोरा सिद्धांत ही प्रतिपादित नहीं है। उसके साथ अनुभव की बात जुड़ी हुई है। इससे एक प्राच्य विद्या की महत्वपूर्ण शाखा को समझने का सुअवसर मिलेगा।

—आचार्य महाप्रज्ञ

निवेदन

विदुषी साध्वी रमाकुमारीजी द्वारा लिखित 'प्रेक्षा-ध्यान : स्वर-साधना' का अध्ययन एक आध्यात्मिक अनुभव की संतोषप्रद यात्रा की अनुभूति देता है। आज के इस भौतिक युग में जब समस्त सृष्टि 'त्रिताप' से संकट-ग्रस्त है और उपकार के सभी साधन मात्र छलावा सिद्ध हो रहे हैं, साध्वी जी की यह कृति यंत्रणा-मुक्ति के सहज पथ से परिचित कराती है। इसे विडम्बना ही कहा जाएगा कि अपनी चरम वैज्ञानिक उपलब्धियों के बाद भी प्राणी को न रोग-मुक्ति मिली है, न कुंठाओं की वर्जना पर वह विजय प्राप्त कर सका है। सत्य यह है कि विज्ञान अन्तिम सत्य नहीं है, अन्तिम सत्य है आध्यात्मिक उपलब्धि जिसके अभाव में सारे प्रयत्न मृगमरीचिका ही सिद्ध होते हैं।

हमारे यहां 'स्वर-साधना' का वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक महत्त्व रहा है। धर्म-साधना के साथ-साथ स्वर-साधना का वैज्ञानिक विवेचन विदुषी साध्वी जी ने इस ग्रन्थ में सहज रूप में प्रस्तुत किया है, भेषज-विज्ञान के अपना महत्त्व है, लेकिन स्वर-साधना पर आधारित क्रियाएं रोग-मुक्ति के शाश्वत उपाय हैं। साध्वी जी ने साधना के इस पथ से चर-अचर प्रकृति के मानवीय सम्बन्धों, दिवस, वार, तिथियों, मास, ऋतुओं आदि के मनुष्य-शरीर से सम्बन्धों आदि का उपचारात्मक निदान अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें योग-साधना, भेषज ज्ञान, काल, वात, तत्त्व एवं बाह्य-प्रकृति का मनुष्य-शरीर से सम्बन्ध न केवल शास्त्रोक्त विधि में प्रस्तुत किया है अपितु उसको वैज्ञानिक संदर्भों में जोड़कर मनुष्य की जिजीविषा को बलवती प्रेरणा भी दी है। भौतिकता से ग्रस्त मानव के लिए इसमें सहज उपचार प्रक्रिया को स्वर-साधना के महत्त्व के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है।

यह स्पष्ट है कि इसमें प्रस्तुत ज्ञानवर्द्धक सामग्री गूढ़ और जटिल है अतः लेखिका ने विषयानुकूल संस्कृत की तत्सम शैली में विषय को और गरिमामय ढंग से प्रस्तुत किया है। मानव देह के विभिन्न अंगादि-संस्थानों को समझाने और उनके रोग-सम्बन्धों तक उपचारों की आध्यात्मिक वैज्ञानिक पद्धति का विश्लेषण लेखिका की अपनी विशिष्टता है।

मुझे विश्वास है कि इस कृति का आदर होगा और इसका मनोयोगपूर्वक अध्ययन रोग-निदान के नये आयाम उद्घाटित करेगा।

डॉ. प्रकाश आतुर
अध्यक्ष
साहित्य अकादमी, उदयपुर

प्रस्तुति

धर्मारधना के क्षेत्र में पार्थिव शरीर का जितना मूल्यांकन है उससे भी अधिक मूल्यांकन श्वास, स्वर और प्राण का है। आज के इस वैज्ञानिक युग में स्वर साधना अपना एक विशिष्ट महत्त्व रखती है। अपने शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य को बनाए रखने हेतु इस प्रक्रिया का सर्वाधिक योगदान है, तथा भविष्य में सम्भावित घटनाओं की अवगति कराने में भी यह अपेक्षित सहायता करती है।

प्राग्-ऐतिहासिक काल में इस विद्या का बहुत अधिक प्रचलन था। ज्योतिष-शास्त्री इसके माध्यम से अनागत में घटित होने वाली संघटनाओं का सम्यक् दिग्दर्शन करवा कर अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। यह उनकी आजीविका का एक महत्त्वपूर्ण साधन था।

प्राक्तन सिद्धियों का जीवनवृत्त इस संकेत को प्रदर्शित करता है कि आत्मोपलब्धि के क्षेत्र में भी इसकी मूल्यवत्ता को नकारा नहीं जा सकता। इसे प्राणोपासना अथवा स्वर-साधना किसी भी सम्बोधन से सम्बोधित करें, दोनों एकार्थवाची हैं। यह बाहर से उपलब्ध सम्पत्ति नहीं है, किन्तु आत्मोद्घाटन से प्राप्त होने वाली निजी सम्पत्ति है। यह विरासत में मिला एक गुप्त खजाना है। इसकी एक अपूर्व गरिमा है। वर्तमान युग में इसकी गरिमा पर धुन्ध छा रही है। इतना महत्त्वपूर्ण विज्ञान दीर्घ समय पर्यन्त साधारण लोक मानस की उपेक्षावृत्ति का शिकार बना रहा, यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य ही था। यह विद्या सर्वोच्च विद्या है। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों के विकास में आशातीत सफलता प्राप्ति का एकमात्र साधन है। इस वैज्ञानिक विद्या के माध्यम से व्यक्ति अपने दुःख, क्लेश और विपत्ति का सहज रूप से निवारण कर सकता है। इस दुर्लभ ज्ञानोपलब्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

यह अत्यन्त हर्ष और प्रसन्नता का विषय है कि आधुनिक युग में जन-मानस का ध्यान स्वर-साधना और योग-साधना की ओर पुनः आकृष्ट हो रहा है। स्वरोदय ग्रन्थों में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों सिद्धियों का स्थान-स्थान पर समीचीन वर्णन उपलब्ध है। प्राचीन योग ग्रन्थों के कर्ता मनुष्य के शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों की गणना करते हैं। इसमें मुख्य तीन नाड़ियाँ हैं— इडा, पिंगला और सुषुम्ना। भौतिक कार्यों की सिद्धि हेतु इडा और पिंगला ये दो नाड़ियाँ प्रधान मानी गई हैं। सुषुम्ना आत्मोपलब्धि का राजपथ है। यह चेतना के ऊर्ध्वारोहण का अमोघ साधन है। श्रमण भगवान महावीर

के मुखारबिन्द से निःसृत वाणी इस महापथ की ओर विशेष रूप से इंगित करती है ।

“पणया वीरा महावीहिं” आ. सू ३७ उद्देशो-तीसरा । स्वरोदय ज्ञान जैन शास्त्रों में बहुचर्चित चवदह पूर्वों के अन्तर्गत समाहित हुआ है । यह पूर्वों से अतिरिक्त ज्ञान नहीं है । वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में गहराई से अवलोकन करें तो न चवदह पूर्वधर दृष्टिगत होते हैं, न दस पूर्वधर ही । प्रबुद्ध ऋषियों की अवधारणा है कि इस अपूर्व ज्ञान का काल परिवर्तन के साथ शनैः-शनै लोप होता चला गया तथा स्वर विद्या का भी अधिकांश रूप से हास हो गया । हम परम सौभाग्यशाली हैं कि अणुवत अनुशास्ता “भारत-ज्योति” गणाधिपति तुलसी तथा महामनीषी प्रबुद्ध चेता आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने “प्रेक्षा-ध्यान” साधना द्वारा इस ज्ञान के आवृत मार्ग को अनावृत किया है । इस नवीन मार्ग के समुद्घाटन से विश्व के समग्र व्यक्ति आकर्षित हो रहे हैं, क्योंकि यह तनाव-ग्रस्त जीवन को तनाव से मुक्त बनाने की एक विशुद्ध प्रक्रिया है । भगवान महावीर की विलुप्त ध्यान-साधना-पद्धति को उजागर किया है । इससे जनमानस कदापि उन्नत नहीं हो सकता । यह आपके असीम अनुग्रह का ही प्रतिफल है । एतद्विषयक मेरा अध्ययन काफी लम्बे असें से चल रहा है, किन्तु इस विषय पर लिखने की जिज्ञासा मेरे मानस में कभी पैदा नहीं हुई । दो फरवरी सन् ८३ के बीदासर महोत्सव पर ज्योति-पुंज श्री युवाचार्यप्रवर द्वारा संप्रेरणा प्राप्त हुई । यह कृति उसका ही प्रतिफल है । तत्पश्चात् इस पुष्प के सृजन का शुभारम्भ महावीर कालोनी, अजमेर में हुआ । इस कृति के गुम्फन में कतिपय ग्रन्थ आधारभूत हैं, तथा अनुभवों का आधार तो सर्वोपरि है ही । स्वर साधना का सर्वोच्च आधार बिन्दु पंच तत्त्व है । ये तत्त्व ही कार्य सिद्धि-असिद्धि की विलक्षणता प्रकट करते हैं । मुझे इस पुष्प के प्रणयन में यत्-किञ्चित् सहयोग तो सभी साध्वीवृन्द का मिलता रहा है किन्तु मेरी ज्येष्ठा भगिनी साध्वीश्री भीखांजी का विशेष सहयोग रहा । स्वरोदय ज्ञान की विशेषज्ञा साध्वीश्री जयश्री जी तथा मौन ध्यान की विशिष्ट साधिका साध्वीश्री राजकुमारीजी की अन्तरंग प्रेरणा का ही प्रतीक है कि यह कार्य परिसंपन्न हो गया । प्रस्तुत पुष्प में मैंने सर्वजन हितार्थ, लाभार्थ व सुखार्थ प्रांजल भाषा में ज्ञानवर्धक प्रसंग उल्लिखित किए हैं । मुझे आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि सुधी पाठकगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे ।

— साध्वी रमाकुमारी
(नोहर).

अनुक्रमणिका

| | | |
|----|--|-------|
| १. | स्वरोदय | १ |
| २. | स्वर में नाड़ी समूह का विवेचन | ३—४ |
| ३. | स्वर तथा शारीरिक अनुबन्ध | ५—१० |
| ४. | शरीर और तंत्रिका तंत्र | ११—१८ |
| | केन्द्रीय तंत्रिका संस्थान | ११ |
| | अन्तःस्त्रावी ग्रंथि तंत्र | १२ |
| ५. | वायु के प्रकार और कार्य | १३—१४ |
| | उपवायु के सम्बन्ध में घेरण्ड संहिता का अभिमत | १४ |
| ६. | स्वर साधना एवं तिथिक्रम | १५—१६ |
| | शुक्ल पक्ष का तिथिक्रम | १५ |
| | कृष्ण पक्ष का तिथिक्रम | १५ |
| | वारों से स्वरों का सम्बन्ध | १६ |
| ७. | पंचतत्त्वज्ञान एवं चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा | १७—२३ |
| | (१) पृथ्वी-तत्त्व | १९ |
| | (२) जल-तत्त्व | २० |
| | (३) अग्नि-तत्त्व | २१ |
| | (४) वायु-तत्त्व | २१ |
| | (५) आकाश-तत्त्व | २२ |
| | (६) आकाश-तत्त्व तथा उसका ध्यान | २२ |
| | (७) षण्मुखी मुद्रा के द्वारा तत्त्वों की पहचान | २३ |
| ८. | लेश्या ध्यान एवं पंच तत्त्व विश्लेषण | २४—२५ |
| | नाड़ी ग्रंथि-तंत्र पर रंगों का प्रभाव | २४ |
| | लेश्या और रंगों का ध्यान | २५ |
| ९. | राशि चक्र एवं यौगिक क्रियाएं | २६—२९ |

| | | |
|-----|--|-------|
| १०. | स्वरोदय तत्त्वों की निश्चित अवधि | ३०—३५ |
| | तत्त्व दर्शन तालिका | ३१ |
| | स्वर तत्त्व एवं नक्षत्र | ३२ |
| | स्वर तत्त्व एवं तिथि बल | ३२ |
| | स्वर तत्त्व में ग्रहों की स्थिति | ३३ |
| | स्वर तत्त्व गुण और बल | ३३ |
| | तत्त्वों की उपस्थिति में लाभालाभ का प्रश्न | ३३ |
| | ऋतु एवं संक्रांति सम्बन्ध | ३४ |
| | स्वरोदय और लग्न विचार | ३५ |
| ११. | स्वरोदय और वर्ष फल विज्ञान | ३६—४० |
| | वर्ष फल जानने की द्वितीय विधि | ३७ |
| | अग्नि वायु और आकाश तत्त्व | ३८ |
| | रोगोत्पत्ति का मूल कारण | ३९ |
| | “गमन करने में स्वरोदय का विचार” | ३९ |
| १२. | स्वरोदय और प्रश्नों की यथार्थता | ४१ |
| १३. | स्वरोदय और रोग निदान | ४४—४७ |
| | स्वर परिवर्तन और रोगोपचार | ४४ |
| | स्वर और स्वास्थ्य | ४४ |
| १४. | स्वरोदय और काल परिज्ञान | ४९ |
| १५. | प्राणवायु की गति का प्रमाण | ५० |
| १६. | स्वर विज्ञान एवं दीर्घ जीवन | ५२ |
| १७. | स्वरोदय और कार्य | ५४ |
| १८. | श्वासोच्छ्वास बदलने की विधि | ५६—५८ |
| | शुभाशुभ प्रश्नों का समाधान | ५७ |
| | तत्त्वोदय में प्रश्नों की यथार्थता | ५७ |

१. स्वरोदय

स्वर + उदय = स्वरोदय

प्राणधारा के नियमपूर्वक चलने की विधि को स्वरोदय कहते हैं। यह अत्यन्त प्राचीन और प्रतिष्ठित विद्या है। विश्व की समस्त विद्याओं का यह केन्द्र-स्थल है। इस शक्ति को हमारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर की सक्रियता के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया है। संसार का कोई भी प्राणी इस शक्ति के अभाव में चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकता। इसे विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। जैसे—श्वास-स्वर एवं प्राण-धारा। इसकी शक्ति अजेय है, यह हमारी समग्र इन्द्रियों का गोपा (रक्षक) है। मनुष्य ने जो सर्वप्रथम अनुभूति—गम्य तत्त्व संप्राप्त किया है, वह यही प्राण ऊर्जा है, जो मनुष्य को जन्म के साथ ही प्राप्त होती है। इसके मुख्य दो मार्ग हैं— मुख और नासिका। श्वासोच्छ्वास का प्रवाह एक समय में दोनों नासाछिद्रों से एक साथ नहीं होता। जब एक नासाछिद्र का निश्चित समय पूरा हो जाता है तब दूसरे नासा-छिद्र से श्वास अर्थात् स्वर का आवागमन प्रारम्भ होता है। इस प्रकार स्वर के प्रवाह में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रक्रिया की श्रेष्ठता का प्रतिपादन “ऐतरेयारण्यक” में सम्यक् प्रकार से किया गया है।

प्राणः प्राणो वा आयुः ।

यावदस्मिच्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः ॥

जब तक शरीर में प्राण अवस्थित रहता है, तब तक आयु की स्थिति समझनी चाहिए। शांखायन आरण्यक में प्राण-शक्ति के विषय में सूत्र मिलता है।

रेतो वै प्राणः हमारे शरीर में जो प्राण, शक्ति बल, ऊर्जा और तेज दृष्टिगत होता है, इसे ही प्राण माना गया है। अब हम प्राण-शक्ति की यथार्थता से पूर्ण रूप से परिचित हो गये हैं। व्यास पुत्र श्री शुकदेव इस रहस्यमयी विद्या के विशिष्ट ज्ञाता थे। उन्होंने अपने शिष्य चरणदास को यह विद्या प्रदान की थी। उन्होंने इसको हिन्दी में कविता-बद्ध कर प्रबुद्ध जन-मानस को आकृष्ट किया था। निम्नोक्त पद्य इसका साक्षी है—

सब योगन को योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान ।

सर्व सिद्धि की सिद्धि है, तत्त्व सुरन को ध्यान ॥

स्वरोदय ज्ञान को सर्व योग-साधना में श्रेष्ठ माना गया है। जिसको स्वर तत्त्व का यथार्थ ज्ञान हो जाता है, वह सर्व सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

स्वरोदय ज्ञानी अतीत, अनागत और वर्तमान के पूर्ण ज्ञाता होते थे। अपनी संभावित व्याधि एवं मृत्यु का पूर्वाभास करने में बड़े दक्ष होते थे। इसलिए उन्हें प्रत्येक कार्य क्षेत्र में शत प्रतिशत सफलता प्राप्त होती थी। उनकी संकल्प-शक्ति को कोई तर्क विखण्डित नहीं कर सकता था, क्योंकि वे आत्म-विश्वास के महान-धनी होते थे। वर्तमान युग में आत्म-विश्वास एवं संकल्प शक्ति की न्यूनता दृष्टिगोचर होती है, जिसके फलस्वरूप ही मनुष्य को अपने कार्य में साफल्य के दर्शन नहीं होते। अपेक्षा इस बात की है कि व्यक्ति अपना आत्म विश्वास जगाए।

धरणी टरे गिरिवर टरे, टरे जगत सुन मीत।
वचन स्वरोदय ना टरे, कहे मुरली सुत रणजीत ॥

प्रेक्षा-ध्यान-साधना में जैसे—श्वासोच्छ्वास के अवलम्बन को महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त है, इसी प्रकार स्वरोदय-साधना में भी श्वास-प्रश्वास के आलम्बन को मुख्यता दी गई है, क्योंकि श्वास ही एक ऐसी स्वतंत्र क्रिया है जिससे स्थूल से सूक्ष्म तक बिना रुकावट के पहुंचा जा सकता है। स्वर की गति निर्बाध है। मनुष्य का मन एक चंचल अश्व है जो प्रतिक्षण प्राण के ऊर्ध्वारोहण में गत्यावरोध समुत्पन्न करता रहता है। ध्यान-साधकों का एक स्वानुभूत संकथन है कि जब मन को श्वास का सशक्त आलम्बन प्राप्त हो जाता है तब मन स्वतः निष्कम्प, निस्तरंग एवं एकाग्र हो जाता है। स्वर-श्वास की गति का प्रवाह भी विविध प्रकार से होता है। जैसे—विषम-श्वास, ह्रस्व-श्वास, अवरुद्ध-श्वास, दीर्घ-श्वास, पूर्ण-श्वास और शुद्ध-श्वास। श्वास की गति की पहचान करना अतिशय कठिन है। जब ह्रस्व एवं विषम-श्वास चलता है तब मन की चंचलता का प्रवर्धन हो जाता है, या यों कहिए कि मन की चंचलता ही श्वास को चंचल बनाती है। हम जितना गहरा श्वास लेते हैं उतनी ही प्राण-शक्ति प्राप्त होती है। जब हम “श्वास-प्रेक्षा” द्वारा श्वास-दर्शन करते हैं तब प्राण-शक्ति बढ़ जाती है। जो यौगिक प्रदर्शन आज देखने में आते हैं वे सारे श्वास के स्तर पर ही घटित होते हैं। इसके आधार पर मोटर या ट्रक को छाती पर से निकाला जा सकता है। आत्मा में अनन्त शक्ति और अनन्त वीर्य है। श्वास उस अनन्त शक्ति का एक अंश है। हम जितनी मात्रा में प्राण-वायु (ऑक्सीजन) लेंगे उतना ही प्राण विशुद्ध एवं सक्रिय होगा। यदि प्राण-वायु नहीं मिलेगी तो प्राण में उत्तेजना व सक्रियता कहां से आयेगी ?



२. स्वर में नाड़ी-समूह का विवेचन

नाड़ी-समूह मानव शरीर में चक्रवत् अवस्थित है। प्राणों की स्थिति इसके आधार पर आधारित है। विज्ञान ने भी शरीर के मुख्य दो तंत्र माने हैं— एक है “नाड़ी-ग्रन्थि-तंत्र” दूसरा है “अन्तः-स्रावी-ग्रन्थि तंत्र”। ये शरीर का प्रमुख रूप से नियंत्रण और संयोजन करते हैं। इन दोनों का पारस्परिक अनुबन्ध इतना विलक्षण है कि “नाड़ी-तंत्र” और “ग्रन्थि-तंत्र” के अवयवों को एक अखण्ड-तंत्र के रूप में माना जाने लगा है। जिसे—Neuro-endocrine-System की संज्ञा दी गई है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि-तंत्र अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक नियंत्रकों के स्रावों (हार्मोन) के माध्यम से करता है। ये हार्मोन न केवल प्रत्येक शारीरिक क्रिया में भाग लेते हैं अपितु व्यक्ति की मानसिक दशाओं, स्वभाव और व्यवहार पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। ये मनुष्य के भीतरी आवेशों, आवेशों, वृत्तियों और वासनाओं के अत्यन्त शक्तिशाली व प्रेरक बलों को उत्पन्न करने वाले प्रमुख स्रोत हैं।

स्वरोदय शास्त्र में दस नाड़ियां मानी गई हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं :

१. इडा २. पिंगला ३. सुषुम्ना ४. कुहू ५. शंखिनी ६. गांधारी ७. हस्ति जिह्वा ८. यशस्विनी ९. पूषा और १०. अलम्बुषा। किन्तु इनमें प्रधानता तीन नाड़ियों को प्राप्त हुई है। इडा, पिंगला और सुषुम्ना के स्वामी क्रमशः चन्द्र, सूर्य और अग्नि हैं। मूलाधार की कर्णिका का त्रिकोणाकार ही इनका केन्द्र-स्थल माना गया है। इडा शरीर के वाम भाग में, पिंगला दक्षिण भाग में, तथा सुषुम्ना मध्य भाग में अवस्थित है। सूर्य चक्र इसी नाड़ी के आधार पर अधिष्ठित है। ये तीनों नाड़ीयां षट् चक्र को अंकमाल किये हुए हैं। सुषुम्ना मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक प्रसृत हैं। कुहू और शंखिनी की शाखा अधः और ऊर्ध्व दो भागों में फैली हुई है। कन्द से निकल कर अधो—मुख एवं सुषुम्ना से ऊर्ध्व मुख होकर फैली हुई है। गान्धारी वामनेत्र में, हस्ति जिह्वा दक्षिण नेत्र में, यशस्विनी बायें कान में, पूषा दक्षिण कान में, अलम्बुषा मुखमण्डल में, कुहू लिंग में तथा गुह्यदेश (मूल कन्द) में शंखिनी अवस्थित रहती है। ये दस नाड़ियां शरीर के दस द्वारों को वेष्टित किये हुए हैं। इस नाड़ी-तंत्र का समर्थन डॉ. रेले ने भी

किया है। पण्डित त्रयम्बक भास्कर खरे ने अपना अभिमत इस प्रकार प्रकट किया है कि वामनेत्र से वाम पद के अंगुष्ठ पर्यन्त गान्धारी नाड़ी सतत गतिशील रहती है। दक्षिण नेत्र से दक्षिण पैर के अंगुष्ठ पर्यन्त चलने वाली नाड़ी हस्ति जिह्वा है। सुषुम्ना के दाईं ओर सरस्वती-नाड़ी विद्यमान है। वह जिह्वा के पास जाकर अपना सम्बन्ध स्थापित करती है। दायें भाग से उदर पर्यन्त पूषा-नाड़ी की स्थिति है। पूषा और सरस्वती के मध्य में यशस्विनी-नाड़ी है। गान्धारी और सरस्वती के बीच में “शंखिनी-नाड़ी” की स्थिति है। कुहू और यशस्विनी के मध्य में “वारुणी-नाड़ी” की अवस्थिति मानी गई है जिसकी व्याप्ति शरीर के निम्न भाग में है। कुहू और हस्ति जिह्वा के मध्य में “विश्वोदरा-नाड़ी” है। यह भी वारुणी-नाड़ी की भाँति शरीर के नीचे के भाग में पूर्ण रूप से फैली हुई है। सुषुम्ना के मध्य भाग में वज्रा एवं वज्रा के मध्य में “चित्रा-नाड़ी” की अवस्थिति है। इन दोनों नाड़ी-तंत्र के मध्य में “ब्रह्म-नाड़ी” विद्यमान है। इसका विस्तृत वर्णन बृहद् शिव स्वरोदय में उपलब्ध होता है। ब्रह्मनाड़ी का ध्यान-साधना के साथ संबंध है। इसका एक भाग सुषुम्ना तथा दूसरा भाग सहस्रार से अनुबन्धित रहता है। यह ज्ञान प्रकाश करने वाली नाड़ी है। यह अतिशय सूक्ष्म होती है। स्वरोदय शास्त्री इन नाड़ियों की संख्या कोई दस तथा कोई सतरह मानते हैं जिसका वर्णन मैंने संक्षिप्त रूप से यहां किया है। अगर विस्तार से जानने की इच्छा हो तो स्वरोदय-ग्रन्थों का पारायण करें।



३. स्वर तथा शारीरिक अनुबन्ध

स्वर तथा शरीर का घनिष्ठतम संबंध है। इसके अभाव में शरीर का चिरकाल तक टिक पाना असंभव सा प्रतीत होता है। स्वर एवं श्वासोच्छ्वास दोनों पर्यायवाची शब्द के रूप में व्यवहृत हुए हैं। स्वर जब प्रवाहित होता है तब दोनों नासा-छिद्रों से एक साथ प्रवाहित नहीं होता। शरीर संरचना के साथ एक प्राकृतिक नियम जुड़ा हुआ कि श्वास कभी किसी नथुने से और कभी किसी नथुने से अदल-बदल कर ही चलता है। अगर व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ है तो उसका स्वर-प्रवाह प्रकृति के नियमानुसार ही चलेगा। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। संस्कृत भाषा में स्वर को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है।

स्व रमते क्रीडति स्वेच्छया
गच्छति वा इति स्वरम्

जो अपने आप चलता है; बिना प्रयत्न के चलता है उसे स्वर कहते हैं। एक नासा-छिद्र की वायु दूसरे नासा-छिद्र में प्रवेश करती है, उसे उदय-काल कहते हैं। जब शरीर के एक भाग का नाडी-तंत्र कार्य में प्रवृत्त होता है तब दूसरे भाग का नाडी-तंत्र विराम करने लग जाता है। जिस तरफ का श्वास अर्थात् स्वर चलता है तब उसी ओर का फेफड़ा (फुफ्फुस) अधिक मात्रा में ऑक्सीजन ग्रहण करता है। रक्त का संचरण भी उसी ओर अधिक मात्रा में होने लगता है।

स्वर की गति का प्रवाह फुफ्फुस हृदय और नाडी-तंत्र पर आधारित है। अब यह निश्चित रूप से प्रमाणित हो गया है कि नाडी-तंत्र पर दबाव देने से स्वर की गति में स्वतः परिवर्तन घटित होने लग जाता है। श्वास की धारा बदल जाती है। शुद्ध-श्वास प्रवाहित होने लगता है। शुद्ध-श्वास का तात्पर्य है कि एक तत्त्व के साथ अन्य तत्त्वों का बिल्कुल सम्मिश्रण नहीं होना चाहिए। जैसे—पृथ्वी-तत्त्व में जल-तत्त्व आदि अन्य तत्त्वों का मिश्रण विपरीत फल प्रदर्शित करता है। उसे हम शुद्ध-श्वास के नाम से अभिहित नहीं कर सकते। प्राण के प्रवाह को ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए सुषुम्ना का योगदान सर्वोच्च माना गया है।

जब श्वास का प्रवाह सुषुम्ना में बिना प्रयत्न के प्रवाहित होने लगता है तब सुनिश्चित रूप से समझना होगा कि इडा और पिंगला का पथ मल रहित एवं विशुद्ध हो गया है। योगाचार्यों का यह संकथन अनुभूति गम्य और

यथार्थता से अनुस्यूत है। तथा अपने लब्ध अनुभवों के आधार पर उन्होने यह उद्घोषित किया कि सुषुम्ना की समुपस्थिति में चित्त को पूर्णतया समाधिस्थ किया जा सकता है, किंतु सुषुम्ना का सम्यक् परीक्षण करना नितांत अपेक्षित है कि सुषुम्ना किस तत्त्व के साथ चल रही है। अगर सुषुम्ना आकाश-तत्त्व गामी है तो वह साधना में सर्वाधिक रूप से उपयोगी हो सकती है क्योंकि जब सुषुम्ना सूक्ष्म तत्त्व अवगाहिनी होती है वही सुषुम्ना सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ हो सकती है। जैनागमों में सूक्ष्म शरीर को दो भागों में विभक्त किया गया है।

१. तैजस और २. कार्मण। तैजस को प्राण शक्ति के रूप में स्वीकार किया है तथा कार्मण को संस्कारों का मूल स्रोत माना गया है।

ध्यान-साधना में प्रवेश करने से पूर्व शरीर संरचना का संक्षिप्त ज्ञान करना अपेक्षित है।

शरीर के मुख्य दो अंग हैं (१) हृदय और (२) फुफ्फुस। शरीरशास्त्री हृदय की लम्बाई और चौड़ाई का माप इस प्रकार मानते हैं। हृदय १५ सेंटीमीटर लम्बा तथा १० सेंटीमीटर चौड़ा होता है। उसका रंग भूरा और कुछ लाल होता है। उसका वजन ३०० से ३५० ग्राम होता है।

यह वक्षस्थल और उदर का विभाजन करने वाले तनुपट (डायाफ्राम) के ठीक मध्यभाग में आगे की तरफ स्थित है। दो स्नायुओं के द्वारा लटका हुआ रहता है। तथा दोनों फेफड़ों से घिरा हुआ रहता है। खोखली मांसपेशी के रूप में अवस्थित यह हृदय चार खण्डों में विभाजित है जिनमें से दो खण्ड दाएं और दो बाएं होते हैं। इन खण्डों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता किन्तु प्रत्येक ओर से ऊपर नीचे के खंड एक तरफ के कपाट (वाल्व) के द्वारा जुड़े हुए होते हैं। हृदय पम्प दोहरा कार्य सम्पादित करने की क्षमता रखता है।

१. रक्त शुद्धि के लिए रक्त को फेफड़ों में पहुंचाना।

२. तथा शुद्ध-रक्त को शरीर के समस्त अवयवों में परिसंचरित करना।

हमारे शरीर में दो परिसंचरण तन्त्र हैं—

१. सर्वांगी-परिसंचरण

समग्र शरीर में होने वाला रक्त प्रवाह।

२. फुफ्फुसीय परिसंचरण

हृदय से फुफ्फुस तक और फुफ्फुस से पुनः हृदय तक की परिक्रमा।

इस प्रकार दोनों परिक्रमाएं हृदय से प्रारम्भ होती हैं तथा हृदय से ही

पूर्ण होती हैं। फिर भी एक दूसरे से मिलती नहीं हैं। दोनों के परिपथ अलग-अलग हैं।

रक्त-वाहिकाएं—धमनियां, शिराएं, कोशिकाएं व विभिन्न परिमाण की अनेकानेक रक्त-वाहिकाएं समस्त शरीर में जटिल जाली के रूप में होती हैं। इनके बीच में आन्तरिक संचार हो सकता है। ये वाहिकाएं शरीर की प्रत्येक कोशिका से सम्पर्क करती हैं।

रक्त-वाहिकाएं मुख्यतः तीन प्रकार की होती हैं।

१. धमनियां २. शिराएं ३. कोशिकाएं। जो रक्तवाहिकाएं हृदय से शरीर को रक्त पहुंचाती हैं उन्हें धमनियों की संज्ञा दी गई है। जब कि उससे उलटा—शरीर से हृदय की ओर रक्त को प्रवाहित करने वाली नलिकाएं शिराएं कहलाती हैं। हृदय के संकुचन (धड़कन के समय होने वाले) के द्वारा उत्पन्न दबाव (प्रेशर) धमनियों में बना रहता है जो क्रमशः रक्त-प्रवाह की गति के साथ कम होता जाता है। इसलिए शिराओं की अपेक्षा धमनियों में दबाव अधिक होता है। अतः धमनियों की दीवार शिराओं की अपेक्षा अधिक मोटी एवं मजबूत होती है। विभिन्न धमनियों की दीवारें भी शिराओं की अपेक्षा मोटी एवं मजबूत मानी गई हैं। विभिन्न धमनियों के परिणामों में काफी अंतर होता है। महाधमनी (Aorta) का व्यास २५ मिलीमीटर होता है। वहां सबसे महीन धमनियों का व्यास १ से २ मिलीमीटर ही होता है। धमनियों की दीवारों के लयबद्ध संकुचनों के द्वारा धमनियों में होने वाले रक्त-प्रवाह को आगे बढ़ाता है। कोशिकाएं अपने आप में इतनी सूक्ष्म होती हैं कि रक्त-कोशिकाओं को एक-एक की पंक्ति में से उनको गुजरना पड़ता है। कोशिकाएं ऊतकों के भीतर व्याप्त होकर शरीर की कोशिकाओं से सम्पर्क करती हैं। अपने साथ लाए हुए ऑक्सीजन तथा पोषक-तत्व हार्मोन आदि पदार्थ रक्त द्वारा कोशिकाओं को सौंप दिए जाते हैं एवं कोशिकाओं द्वारा निर्मित निष्कासित करने योग्य सारे पदार्थ (कार्बन-डाई-ऑक्साइड) उनसे रक्त में विसर्जित कर दिये जाते हैं। यह आदान-प्रदान की क्रिया इतनी त्वरित होती है कि प्रविष्ट होने वाला प्रत्येक रक्त दलिक किसी कोशिका में केवल एक से तीन सेकण्ड तक ही रह पाता है। समग्र कोशिकाओं की लम्बाई पूरे परिसंचरण-तंत्र की लम्बाई का ९९ प्रतिशत से अधिक हिस्सा है। दूसरे छोर पर कोशिकाएं लघु शिराओं में संलीन हो जाती हैं जो कि शिराओं की शाखा-प्रशाखाएं हैं। शिराएं अन्ततोगत्वा दो महाशिराओं के माध्यम से हृदय के दाएं प्रखण्ड अलिन्द Auricle में रक्त को पहुंचाती हैं। शिरा की दीवारें इतनी अधिक महीन होती हैं कि रक्तचाप कम हो जाता है तो वे ढह जाने की सी स्थिति में आ जाती हैं। शरीर के किसी भी हिस्से से जहां रक्त ले जाने वाली मुख्य धमनी है

वहां उस हिस्से से वापिस रक्त लाने के लिए तत्सम्बन्धित शिरा भी सामान्यतः होती है।

हृत्कार्य चक्र Cardiac Cycle

हृदय की प्रत्येक धड़कन में क्रियाओं की जो एक जटिल-सी शृंखला घटित होती है उसे हृत्कार्य-चक्र कहते हैं। उसमें एक सेकण्ड से भी कम समय लगता है। हृदय का कार्यशील भाग उसकी पेशीय दीवारें हैं। वे लयबद्ध रूप से आकुंचन-विकुंचन करती हैं। यह लयबद्धता स्वतःप्रेरित होती है। इसमें किसी भी प्रकार के रासायनिक/ तन्त्रिका-जन्य (विद्युत्जन्य) प्रेरक बल की आवश्यकता नहीं होती। चक्र का प्रारम्भ हृदय की पेशीय दीवारों के विकुंचन [शिथिलीकरण] से उस समय होता है जब शरीर समस्त ऊतकों से शिराओं द्वारा अशुद्ध रक्त हृदय के दायीं ओर से ऊपर के प्रखण्ड—अलिन्द Auricle में प्रवेश करता है। इस रक्त में कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा बहुत अधिक होती है। इसी समय फुफ्फुसीय शिरा द्वारा ऑक्सीजनयुक्त शुद्ध रक्त हृदय की बायीं ओर के ऊपर के प्रखण्ड अलिन्द में पहुंचता है। तत्पश्चात् हृदय की पेशीय दीवारें आकुंचित हो जाती हैं। इसके प्रखण्डों के भीतर दबाव पड़ता है, जिससे दोनों अलिन्दों से रक्त बाहर की ओर ढकेल दिया जाता है। दाएं अलिन्द के इकतरफी वाल्व (ढक्कन) को खोलकर अशुद्ध रक्त निलय में घुस जाता है और वहां से फुफ्फुसीय धमनी द्वारा वह [शुद्ध होने के लिए] फुफ्फुस तक पहुंचता है। उसी समय बाएं अलिन्द से ऑक्सीजन युक्त शुद्ध रक्त पहले बाएं निलय में और वहां से बाहर महाधमनी में ढकेला जाता है। महाधमनी से शुद्ध-रक्त धमनियों एवं लघु-धमनियों से होता हुआ सूक्ष्म कोशिकाओं तक पहुंचकर फिर सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। रक्त की लाल कणिकाएं, जो ऑक्सीजन वहन करती हैं, सूक्ष्म कोशिकाओं के अन्दर से एक पंक्ति में प्रवेश करती हैं तथा उनसे कार्बनडाई-ऑक्साइड ग्रहण करती हैं। रक्त शिराओं द्वारा उलटी दिशा में अर्थात् हृदय की ओर बहने लग जाता है। अन्ततोगत्वा हृदय की दायीं ओर से ऊपर के प्रखण्ड (अलिन्द) में दो महा-शिराओं (बेनाकावा) के माध्यम से खून उड़ेला जाता है। शिराओं तक पहुंचते-पहुंचते रक्त का दबाव शून्य हो जाता है। दूसरी ओर हृदय में खून को अपनी ओर वापिस खींचने की चूषण शक्ति भी नहीं होती है। इसलिए हृदय की ओर रक्त को प्रवाहित करने के लिए अपेक्षित दबाव का स्रोत रक्त-प्रवाह तन्त्र के बाहर से आना चाहिए। इस प्रकार का दबाव पैदा करने में मांसपेशियां सहयोग करती हैं। मांसपेशियों के संकुचन से शिराएं दबती हैं और खून हृदय की ओर संचरित होता है। उसे पीछे जाने से रोकने के लिए इकतरफी वाल्वों की व्यवस्था शिराओं में लगातार की गई है जिनसे खून शिराओं में केवल एक ही दिशा में (हृदय की ओर) धकेला जा सके। निलयों

की संकुचन स्थिति को प्रकुंचन Systole कहा जाता है, तथा शिथिलीकरण की स्थिति को प्रसारण diastole कहा जाता है। जब हृदय की धड़कन सहज अर्थात् (लगभग ६०-६२ स्पन्दन प्रति मिनट) होती है तब प्रसारण ४९ प्रति सेकण्ड तथा प्रकुंचन लगभग ३६ सेकेण्ड चलता है। अति शारीरिक श्रम के समय हृदय की धड़कन बढ़कर लगभग १७० स्पन्दन प्रति मिनट तक हो जाती है। उस समय प्रसारण की अवधि केवल बारह सेकण्ड हो जाती है। यह ध्यान रहे कि हृदय की प्रत्येक धड़कन में पहले दोनों अलिन्दों का संकुचन होता है तथा बाद में दोनों निलयों का जिससे रक्त बाहर की ओर प्रवाहित होना शुरू हो जाता है। फिर बाद में दोनों ओर के प्रखण्ड शिथिल हो जाते हैं और दोनों ओर से आने वाले रक्त को ग्रहण किया जाता है।

हृदय का संपोषण

हृदय के सुचारु संचालन के लिए यह आवश्यक है कि उसे पर्याप्त संपोषण उपलब्ध हो। वस्तुतः उसे अन्य अंगों की अपेक्षा दस गुने अधिक संपोषण की आवश्यकता रहती है। साधारणतः शरीर की कोशिकाओं को उन तक पहुंचने वाले खून से संपोषण प्राप्त होता है। पर हृदय के अलिन्द में जो विपुल मात्रा में खून भरा रहता है उससे हृदय को कोई संपोषण नहीं मिलता। हृदय को संपोषण देने के लिए एक विशेष व्यवस्था दी गई है। दो धमनियां Coronaries महाधमनियों में से निकल कर हृदय के दाईं ओर एवं बाईं ओर होती हुई ऊपर तक जाती हैं तथा हृदय के चारों ओर शाखा-प्रशाखाओं में फैल जाती हैं। ये धमनियां रक्त के माध्यम से सारे हृदय को संपोषण पहुंचाती रहती हैं। यदि किसी भी कारण से ये धमनियां पूर्णतः या अंशतः अवरुद्ध हो जाती हैं तो हृदय को पर्याप्त पोषण नहीं मिल जाता। ऐसी स्थिति में हृदय का दौरा (हार्ट अटेक) होता है जिसे कोरोनरी "थ्रोम्बोसीस" भी कहा जाता है।

हृदय-गति मात्रा (output) विश्रामावस्था के दौरान प्रत्येक प्रकुंचन क्रिया द्वारा ७० मिलीलीटर रक्त हृदय से महाधमनी में पहुंचाया जाता है। इसे स्ट्राक वाल्यूम (प्रतिचेष्टा-परिमाण) कहा जाता है। प्रतिचेष्टा-परिमाण + हृदय की गति (प्रकम्पन) मिनट।

हृदय निर्गत मात्रा

औसतन हृदय-गति (जो ७०-७२ प्रकम्पन प्रति मिनट है) होने पर हृदय निर्गत मात्रा लगभग पांच लीटर हो जाती है। इस प्रकार केवल एक मिनट की स्वल्पावधि में शरीर में विद्यमान रक्त के संपूर्ण परिमाण (जो कि औसतन रूप से वयस्क व्यक्ति में ५ या ६ लीटर होता है) जितनी मात्रा में रक्त हृदय में यातायात कर लेता है। हृदय निर्गत मात्रा सदा एक समान नहीं रहती। पर

शारीरिक आवश्यकतानुसार उसका समायोजन किया जा सकता है। अपनी निर्गत मात्रा को हृदय लगभग पांच गुना या उससे भी अधिक बढ़ाने की क्षमता रखता है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति की उम्र बढ़ती जाती है त्यों-त्यों हृदय की गति मंद होती चली जाती है। गर्भावस्था में वह १४०, शैशवावस्था में ९० तथा वयस्कावस्था में ७०-७२ लगभग हो जाती है।

जब आकाश आदि पांचों तत्त्व बराबर चलते हैं तब दोनों फेफड़े समान रूप से कार्य सम्पादन करते रहते हैं; किन्तु जब तत्त्व का प्रवाह निर्बल हो जाता है अथवा अवरुद्ध हो जाता है तब फेफड़े अस्वस्थ होने लगते हैं जिसके फलस्वरूप शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो जाती है। तब निमोनिया राजयक्ष्मा, प्लूरसी आदि रोगों से शरीर आक्रांत हो जाता है। इन रोगों की चिकित्सा कष्टसाध्य अवश्य है किन्तु दुस्साध्य नहीं है। स्वरोदय शास्त्र में ऐसा विवेचन उपलब्ध होता है कि मृत्यु के समय मनुष्य की प्राण-वायु का प्रवाह नथुनों से सर्वथा बन्द हो जाता है। केवल मुख के द्वारा ही श्वास का आवागमन होता रहता है। ऐसा रोगी चार घड़ी में ही काल-कवलित हो जाता है।

पित्त नलिकाएं और पित्ताशय

यकृत से निःसृत बाह्य नलिकाओं को पित्त नलिकाएं कहते हैं। पित्त हरे और पीत-रंग का पाचक-द्रव्य होता है। यह यकृत में तैयार होता है। औसतन रूप में एक लीटर पित्त प्रतिदिन तैयार होता है। यकृत को सूर्य-लोक कहा गया है। पित्त नलिकाओं के द्वारा यकृत के निचले हिस्से से सटी हुई नासपति के आकर की शैली है। उसमें पित्त संचय किया जाता है। वही पित्त जब गाढ़ा हो जाता है तब पक्वाशय में पहुंचाया जाता है। यकृत शरीर में सबसे बड़ा कारखाना है। यह लगभग ५०० प्रकार के कार्यों का सम्पादन करता है। संसार में वर्षा एवं खेती का आधार सूर्य और चन्द्र है। अंधकार के नाश में भी सूर्य और चन्द्रमा का सर्वाधिक योगदान है। यही संसार में सर्वत्र प्रकाश की किरणें बिखेरता है। इसी प्रकार यकृत और पक्वाशय शरीर का सम्यक् रूप से भरण-पोषण करते हैं। शरीरशास्त्रियों ने पक्वाशय को चन्द्रलोक तथा यकृत को सूर्य की संज्ञा से अभिहित किया है। पक्वाशय को जल भण्डार के रूप में स्वीकृत किया गया है। अगर किसी कारण से पक्वाशय का जल शुष्क हो जाता है तब शरीर सर्वथा निष्क्रिय हो जाता है। शरीर का वर्चस्व एवं ओज कम होने लगता है, इसलिए साधकों को शरीर का यथार्थ ज्ञान करना नितांत अपेक्षित है। जल हमारे शरीर के तापमान की नियंत्रण प्रणाली के कार्य में मूलभूत भूमिका अदा करता है।



४. शरीर और तंत्रिका-तंत्र

तंत्रिका-तंत्र मानव शरीर का जटिलतम तंत्र है। यह शरीर के सभी तंत्रों का नियामक और संयोजक है। इस तंत्र के माध्यम से ही शरीर के समग्र क्रिया-कलापों का संचालन होता है, इसलिए इसे शरीर का महत्वपूर्ण तंत्र माना गया है। यदि तंत्रिका-तंत्र किसी कारण विशेष से अकस्मात् विफल हो जाए तो शरीर की समस्त प्रवृत्तियाँ अवरुद्ध हो जाती हैं। तब सम्पूर्ण अवयव स्तंभित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में न हाथ हिलता है और न पांव हिलता है तथा न मांसपेशियों का संचालन होता है और न अक्षिगत उन्मेष-निमेष की क्रिया ही सम्पादित होती है। श्वास का संचरण भी अन्ततोगत्वा अवरुद्ध हो जाता है।

केन्द्रीय तंत्रिका संस्थान

हमारे केन्द्रीय तंत्रिका संस्थान के मुख्य दो अंग माने गये हैं।

१. मस्तिष्क

२. सुषुम्ना या मेरुरज्जु (Spinal-cord)

मस्तिष्क और सुषुम्ना बिना किसी स्पष्ट भेद रेखा के एक दूसरे से संलग्न हैं। कपाल रन्ध्र का ऊपर का हिस्सा सुषुम्ना के रूप में होता है। विवेकपूर्वक घटित होने वाली समस्त क्रियाओं का निर्देश मस्तिष्क द्वारा संप्राप्त होता है। विज्ञान के अनुसार हमारे मस्तिष्क में R.N.A. नामक रसायन होता है। वह हमारी चेतना की परतों पर छाया रहता है। विज्ञान ने यह खोज निकाला है कि यह रसायन व्यक्तित्व के रूपांतरण का घटक है। इसे घटाया बढ़ाया जा सकता है। पुरानी आदतों को बदलकर नई आदतें डाली जा सकती हैं। प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया रूपांतरण की प्रक्रिया है। हमारे मस्तिष्क के पीछे पीड़ा की अनुभूति का एक केन्द्र है। आज के वैज्ञानिक यह प्रयोग कर रहे हैं कि औषधियों के माध्यम से उस केन्द्र को निष्क्रिय बना दिया जाता है जिससे व्यक्ति पीड़ा का संवेदन न कर सके। इस विषय का अनुसंधान चल रहा है। अनेक औषधियाँ आविष्कृत हुई हैं। उनका प्रयोग भी चल रहा है। जब पीड़ा का केन्द्र पूर्ण रूप से निष्क्रिय हो जाता है तब पीड़ा का संवेदन एवं सुख-दुःख का संवेदन समाप्त हो जाता है। फिर शरीर पर चाहे जैसी पीड़ा का उभार क्यों न हो व्यक्ति को उसका बिल्कुल अनुभव नहीं होता। पीड़ा देता है हमारा संवेदन केन्द्र।

हमारे अन्तःस्नावी ग्रन्थितंत्र के साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा दोनों एक साथ मिलकर शरीर की समग्र क्रियाओं का संपादन करते हैं। तंत्रिका कोशिकाओं से विनिर्मित चमकती हुई रज्जु है।

सुषुम्ना में इसका स्पष्ट दिग्दर्शन करवाया गया है। यह शम्भु अर्थात् सुषुम्ना-नाड़ी हमारे मेरुदण्ड के भीतर से नलिका के आकार वाले मार्ग से होकर गुजरती है। सुषुम्ना ४५ सेंटीमीटर लम्बी होती है। सुषुम्ना की संरचना भी मस्तिष्क की भांति दो पदार्थों से संयुक्त होती है— १. श्वेत और २. धूसर। किन्तु यहां दोनों पदार्थों की स्थिति अलग-अलग रूप में परिवर्तित हो जाती है। १. श्वेत पदार्थ बाहर की ओर रहता है किन्तु २. धूसर पदार्थ उसके भीतर की ओर रहता है। श्वेत पदार्थ धूसर पदार्थ को पूर्णतया आच्छादित रखता है। धूसर भाग में कोषाणु और श्वेत भाग में सूत्र होते हैं। मस्तिष्क के धूसर पदार्थ की भांति सुषुम्ना का धूसर पदार्थ भी तंत्रिका कोशिकाओं से विनिर्मित होता है। श्वेत पदार्थ चर्बीदार खोल से ढके तंत्रिका-सूत्रों से बना होता है। एक है ज्ञानवाही तंत्रिका और दूसरी है क्रियावाही। ज्ञानवाही तंत्रिका इन्द्रियों द्वारा संगृहीत सूचनाएं मस्तिष्क तक पहुंचाती हैं। क्रियावाही तंत्रिका मस्तिष्क से प्राप्त संचालन सम्बन्धी समग्र आदेशों को धड़ और पैर की मांसपेशियों तक पहुंचाती है।

क्लोम-ग्रन्थि के भीतर रहे हुए छोटे-छोटे कोष समूह होते हैं जिन्हें लेंगरहांस के द्वीप कहा जाता है। ग्रन्थि की अन्तःस्त्रावी क्रिया के लिए वे जिम्मेदार होते हैं। यह दो प्रकार से हार्मोनों का स्राव करती है—ग्लूकोगोन और इंसुलिन। इनका मुख्य कार्य है—शरीर के द्वारा ग्लूकोज तथा चिकनाई के उपभोग व सोखने की योग्यता पर नियन्त्रण रखना तथा उसे बनाए रखना।

अन्तःस्त्रावी ग्रन्थितंत्र

अन्तःस्त्रावी ग्रन्थिया (Endocrine glands) नलिकाविहीन होती हैं। उनके स्राव सीधे ही रक्त प्रवाह में छोड़े जाते हैं। वे पूरे शरीर में प्रवाहित होते हैं और उत्पादन-स्थान से सुदूर स्थानों तक अपना कार्य कर सकते हैं। अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियां शरीर में बिखरी हुई पाई जाती हैं। इसके बावजूद इन सबका एक सक्षम-तंत्र बनता है जो शरीर की अन्यान्य क्रियाओं में संगति बिठाकर उनका सुचारु रूप से नियन्त्रण करता है।

मुख्य अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियां ये हैं—पाइनियल, पिच्युटरी, (पीयूष) थाइरायड, पेरा-थाइरायड, थायमस, एड्रीनल (अधिवृक्क), लेंगरहांस के द्वीप तथा गोनाड्स (काम ग्रन्थियां)। ये सब ग्रन्थियां अपेक्षाकृत काफी छोटी होती हैं। रक्त द्वारा उन्हें विपुल मात्रा में पोषक सामग्री उपलब्ध होती है। इन ग्रन्थियों के उत्पादन जैव-रासायनिक यौगिक (organic chemical compound) के रूप में होते हैं। ये स्वल्प मात्रा में भी बहुत अधिक प्रभावशाली होते हैं।

५. वायु के प्रकार और कार्य

प्राण एक आत्मिक शक्ति है जिसे विभाजित नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण शरीर में परिभ्रमण करती हुई यह प्राण-वायु अलग-अलग स्थानों पर भिन्न-भिन्न कार्य सम्पादित करती है। जिस व्यक्ति के शरीर में प्राण-वायु बिना रुकावट के सतत गमन करती है तथा अपनी नैसर्गिक अवस्था में रहती है वह व्यक्ति पूर्ण निरोग माना जाता है। प्राण-वायु को सर्वकार्यकर्तृ कहा गया है। प्रकृत वात और जीवन का सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। शरीर की क्रियाओं को संचालित करने की दृष्टि से शक्ति के पांच विभाग किये गये हैं। स्वरोदय शास्त्र में योगाचार्यों ने उनके नामों का विश्लेषण इस प्रकार किया है।

नामानि नाडिकानां तु वातानां तु वदाम्यऽहम् ।

प्राणाऽपानः समानाश्च उदानो व्यान एव च ॥

वृ. शि. स्व. श्लोक ४२

१. प्राण-वायु—इसका मुख्य स्थान हृदय है। श्वास-प्रश्वास स्वर-यंत्र और अन्न पानादि के परिपाक में सक्रियता पैदा करती है।

२. अपान-वायु—इस वायु का मुख्य स्थान मूलाधार है। यह मल मूत्र का उत्सर्जन कर यकृत अन्तड़ी एवं उदर आदि को क्रियाशील बनाती है।

३. समान-वायु—इसका प्रमुख स्थान नाभि-प्रदेश माना गया है। यह पाचन संस्थान को तथा क्लोम-ग्रन्थि के रस स्राव को प्रेरित करती है। शरीर की विशुद्धि में तथा स्वस्थता में भी अपना योगदान प्रदान करती है।

४. उदान-वायु—इसका कण्ठ प्रदेश माना गया है। यह स्वर-यंत्र के ऊपरी स्थानों को विशेष रूप से प्रभावित करती है। नेत्र, नासिका, कान और मस्तिष्क आदि समग्र अवयव सक्रिय होते हैं।

५. व्यान-वायु—यह शरीर के समस्त अवयवों को प्रभावित करती है। इससे समग्र अङ्गों की संधियां, पेशियां और कोशिकाएं सक्रिय बनती हैं। शरीर को समस्थिति में रखना तथा गति उत्पन्न करना इसका मुख्य कार्य है। यह प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगत होता है कि अधिकांश व्यक्तियों की कटि नीचे की ओर झुक जाया करती है। इसका तात्पर्य यह है कि उन व्यक्तियों की व्यान-वायु दूषित है।

उपवायु के सम्बन्ध में घेरण्ड संहिता का अभिमत

| उपवायु के नाम | उपवायु के कार्य |
|-----------------|---------------------------|
| १. नाग-वायु | चेतना को जागृत करना |
| २. कूर्म-वायु | निद्रा (नींद) लाना |
| ३. कृकल-वायु | क्षुधा (भूख) लगाना |
| ४. देवदत्त-वायु | जंभाई (उवासी) पैदा करना |
| ५. धनंजय-वायु | शब्द (ध्वनि) उत्पन्न करना |

गोरक्ष-पद्धति के अनुसार पंच उपवायु अपना भिन्न-भिन्न कार्य सम्पादित करती हैं। “नागः कूर्मोऽथ कृकलो, देवदत्तो धनंजयः”।

१. नाग-वायु—उद्गार अर्थात् डकार लेने का कार्य करती है।
२. कूर्म-वायु—नेत्रों के उन्मेष-निमेष में सर्वाधिक सहायता प्रदान करती है।
३. कृकल-वायु—क्षुत् अर्थात् छींक लेने का कार्य सम्पादित करती है।
४. देवदत्त-वायु—जंभाइ अर्थात् उवासी लेने में सहायक होती है।
५. धनंजय-वायु—यह वायु सम्पूर्ण शरीर में परिव्याप्त रहती है। यह मृत शरीर में भी कुछ समय पर्यन्त स्थिर रह सकती है।



६. स्वर-साधना एवं तिथिक्रम

प्रातःकाल में श्वास प्रश्वास के प्रवाह का अर्थात् शुभारम्भ होने का नियम विभिन्न तिथियों पर आधारित है। शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से तीन-तीन दिन के त्रिक से क्रमशः चन्द्र-स्वर चलता है। इसे वामा-स्वर एवं इडा-स्वर भी कहते हैं। सर्वप्रथम इसी नासा-छिद्र से श्वास का प्रवाह प्रवहमान होता है। इसकी उपयोगिता सौम्य एवं स्थिर कार्यों में सर्वाधिक रूप से होती है। तथा कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा तिथि से तीन-तीन दिन के त्रिक से क्रमशः सूर्य-स्वर चलता है। इसे पिंगला एवं दक्षिण-स्वर भी कहते हैं। असित-पक्ष में इसी नाना-छिद्र से श्वास का प्रवाह प्रवहमान होता है। इस श्वास के प्रवाह को नियमित एवं स्वाभाविक क्रम माना है। इसकी उपयोगिता अस्थिर एवं क्रूर कार्यों में विहित मानी गई है। इस चन्द्र-स्वर की अपेक्षा अधिक बलवान् होता है। इस प्राकृतिक नियम के अनुसार ही तिथि क्रम का निश्चित निर्धारण किया गया है।

शुक्ल पक्ष का तिथिक्रम

सित-पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीय, तृतीय, सप्तमी, अष्टमी एवं नवमी, त्रयोदशी और पूर्णिमा इन नव तिथियों में सूर्योदय के समय चन्द्र-नाडी से श्वास का प्रवाह यानी चन्द्र-स्वर चलना प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् वह क्रम एक-एक घण्टे के व्यवधान से स्वतः परिवर्तित हो जाता है। दाएं से बाएं एवं बाएं से स्वाभाविक गति में प्रवृत्त हो जाता है। इस क्रम के अनुसार शुक्ल-पक्ष की चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी इन छव तिथियों में प्रातः सूर्योदय के समय सर्वप्रथम दक्षिण-नासा छिद्र से श्वास का अर्थात् स्वर का चलना प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् वह क्रम उपर्युक्त रीति से स्वयमेव परिवर्तित हो जाता है। दोनों नासा-छिद्रों से अदल-बदल कर चलने लगता है।

आदौ चन्द्रः सिते पक्षे, भास्कर स्तु सिते तरे ।

प्रति पत्तौ दिनान्याहु-स्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये ॥

पं. वि. स्व.

कृष्णपक्ष का तिथिक्रम

असित पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, और अमावस्या इन नव तिथियों में श्वास अर्थात् स्वर का प्रवाह प्रातःसूर्योदय के समय दाहिने नथुने से चलना प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् वह क्रम एक-एक घण्टे के व्यवधान से स्वतः परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार

कृष्ण-पक्ष की चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी इन छव तिथियों में सूर्योदय के समय सर्वप्रथम बाएं नथुने से स्वर का चलना प्रारम्भ होता है। तत्पश्चात् वह क्रम उपर्युक्त रीति से स्वतः परिवर्तित हो जाता है।

वारों से स्वरों का सम्बन्ध

प्रत्येक स्वर अढ़ाई घड़ी चलता है। तदनंतर दूसरे स्वर का प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है। स्वरोदय शास्त्र में स्वर के साथ तत्त्वों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि तत्त्व ही वास्तविक एवं असाधारण सिद्धि प्रदान करते हैं। आकाश और पृथ्वी-तत्त्व के पश्चात् दो या तीन मिनट सम स्वर चलता है। यही सुषुम्ना का उदय-काल है। सुषुम्ना से प्रवाह काल के समय में नाड़ी-तन्त्र व अन्तःस्त्रावी ग्रंथि-तंत्र सक्रिय हो जाते हैं तथा चैतन्य-केन्द्र पूर्णतया विकसित हो जाते हैं किन्तु इसकी यथार्थ पहचान कोई विरले योगी ही कर पाते हैं। अगर इस नाड़ी को सुस्थिर कर कुम्भक-प्राणायाम किया जाय तो साधक को निःसन्देह अपूर्व सिद्धि उपलब्ध हो जाती है। सतत अभ्यास से सूर्य-चक्र भी दृग्गोचर होने लगता है। अब यहां एक प्रश्न उभर कर जन-साधारण के मानस पर समुपस्थित होता है कि स्वरों का संबंध तिथियों से कैसे जुड़ा ? वारों से क्यों नहीं जुड़ा ? अगर हम स्वरों के प्रवाह का क्रम वारों से जोड़ते हैं तब सोम, बुध, गुरु और शुक्र को चन्द्र-स्वर चलता है तथा मंगल, शनि एवं रविवार को सूर्य-स्वर चलता है। इस प्रकार के विभाजन से संख्या सम नहीं बैठ सकती तथा फलादेश में विषमता प्रतीत होती है। इसलिए तिथि क्रम की प्रणाली ही सम्यक् बैठती है। तिथि और वारों का अनुबन्ध अपनी एक विरल विशेषता प्रदर्शित करता है। तिथियों का क्रम शरीर से ही समुत्पन्न होता है। बाहर से आरोपित नहीं है। स्वर-वेत्ता के स्वर-प्रवाह में जब किंचित् मात्र भी विषमता प्रतीत होती थी तब वे स्वतः अनुमान लगा लिया करते थे कि अमुक तिथि टूट गई है। पक्ष की प्रतिपदा से पूरे मास का तथा कर्ष की प्रतिपदा से पूरे वर्ष का यथार्थ-ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। प्राचीन काल में अनेक ऋषियों को ऐसा विश्वस्त एवं विशिष्ट ज्ञान उपलब्ध था। वर्तमान युग में ऐसे अनुभवी तथा स्वर विशेषज्ञ व्यक्ति बहुत कम संख्या में हैं।



७. पंच तत्त्व-ज्ञान एवं चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा

प्रेक्षा-ध्यान में चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। आप जिस केन्द्र को जागृत करना चाहते हैं, उसी केन्द्र पर मन को केन्द्रित करें। मन जितना अधिक एकाग्र होगा वह केन्द्र भी उतना ही जागृत एवं सक्रिय हो जायेगा। यदि आपके चैतन्य केन्द्र जागृत अर्थात् सक्रिय हो जाते हैं तो प्राण-धारा को सीधा प्रवाहित होने का अवसर मिल जाता है। प्राण-धारा की गति का अवरोध दूर हो जाता है।

सारे केन्द्र स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त हैं—ज्ञान या विवेक के केन्द्र और वृत्ति या वासना के केन्द्र। ज्ञान के केन्द्र ऊपर हैं। वासना के केन्द्र नीचे हैं। जब हमारी प्राण-धारा या चित्त की गति नीचे की ओर होती है तब वासना-केन्द्र सक्रिय, जागृत एवं तीव्र होता है और ज्ञान-केन्द्र कमजोर हो जाता है। जब हमारी प्राणधारा या चित्त की गति ऊपर की ओर होती है तब “ज्ञान-केन्द्र” तीव्र सक्रिय एवं जागृत हो जाता है और वासना का केन्द्र क्षीण हो जाता है।

चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा का प्रारम्भ शक्ति-केन्द्र से किया जाता है। फिर क्रमशः स्वास्थ्य-केन्द्र, तैजस-केन्द्र आनन्द-केन्द्र, विशुद्धि-केन्द्र, ब्रह्म-केन्द्र, प्राण-केन्द्र, चाक्षुष-केन्द्र, अप्रमाद-केन्द्र, दर्शन-केन्द्र, ज्योति-केन्द्र, शांति-केन्द्र और अन्त में ज्ञान-केन्द्र की प्रेक्षा की जाती है। प्रत्येक केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर वहां पर होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव किया जाता है। प्रारम्भ में प्रत्येक केन्द्रों पर २ से ३ मिनट तक ध्यान किया जाता है। साधक को इस बात की सावधानी रखनी अपेक्षित होता है कि तैजस-केन्द्र और उससे नीचे के केन्द्रों पर ध्यान करने के पश्चात् आनन्द-केन्द्र और ऊपर के केन्द्रों पर ध्यान करना अनिवार्य है। यदि सभी केन्द्रों पर ध्यान करने का समय न हो तो आनन्द या विशुद्धि केन्द्र से ही ध्यान प्रारम्भ करना चाहिए। नीचे के केन्द्रों को छोड़ देना चाहिए।

चैतन्य केन्द्र

| नाम | किस ग्रंथि से संबंधित | स्थान |
|-----------------------|-----------------------|-------------------------------|
| १. शक्ति-केन्द्र, | गोनाडस (काम-ग्रंथि) | पृष्ठ-रज्जु के नीचे के छोर पर |
| २. स्वास्थ्य-केन्द्र, | गोनाडस (काम-ग्रंथि) | पेटु नाभि से चार अंगुल नीचे |

| | | |
|----------------------|--|--------------------------------------|
| ३. तैजस-केन्द्र, | एड्रीनल, पेन्क्रियाज (आइलेण्ड्स आफ लेंगरहेंस) | नाभि |
| ४. आनन्द-केन्द्र, | थायमस | हृदय के पास बिल्कुल बीच में |
| ५. विशुद्धि-केन्द्र, | थाइरायड, पेराथाइरायड | कण्ठ के मध्य भाग में |
| ६. ब्रह्म-केन्द्र, | रसनेन्द्रिय, | जिह्वाय |
| ७. प्राण-केन्द्र, | घ्राणेन्द्रिय, | नासाग्र |
| ८. चाक्षुष-केन्द्र, | चक्षुरिन्द्रिय, | आंख के भीतर |
| ९. अप्रमाद-केन्द्र, | श्रोत्रेन्द्रिय, | कानों के भीतर |
| १०. दर्शन-केन्द्र, | पिच्यूटरी (पीयूष) | शृकुटियों से मध्य में |
| ११. ज्योति-केन्द्र, | हाइपोथेलेमस, | ललाट के मध्य में |
| १२. शांति-केन्द्र, | पाइनियल, | मस्तिष्क का अग्रभाग |
| १३. ज्ञान-केन्द्र, | बृहद् मस्तिष्क (कार्टेक्स) | सिर के ऊपर का भाग (चोटी का स्थान) |

चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा के साथ स्वर का सम्बन्ध स्थापित होता है। जो इसके साथ तत्त्व जुड़े हुए हैं उन्हें गहराई से समझना अपेक्षित है। उसका यहां सम्यक् विवेचन किया गया है।

स्वर के साथ तत्त्वों का घनिष्ठतम सम्बन्ध है। तत्त्व-ज्ञान के अभाव में स्वरों का ज्ञान अपूर्ण माना गया है। इसलिए स्वर का समग्र ज्ञान तत्त्वों पर आधारित है। जो व्यक्ति तत्त्वों की सम्यक् पहचान कर लेता है उसके मुख से निःसृत सभी बातें यथार्थ एवं सत्य समन्वित होती हैं। स्वरोदय में तत्त्व पांच माने गये हैं। उनका विस्तृत विवेचन निम्न प्रकार से किया गया है।

१. आकाश २. वायु ३. अग्नि ४. जल और ५. पृथ्वी। शिव-स्वरोदय एवं तैत्तिरियोपनिषद् में तत्त्वोत्पत्ति के क्रम में समानता परिलक्षित होती है।

आत्मनः आकाशः संभूतः, आकाशाद् वायुः।
वायोरग्निरग्नेरापोद्भ्यः, पृथ्वी पृथिव्या औषधम् ॥

प. वि. स्वो. श्लो.

जब स्वर एक नासा छिद्र से दूसरे नासा छिद्र में परिवर्तित होता है तब प्रारम्भ में आकाश-तत्त्व दृष्टिगत होता है। तदनन्तर वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी-तत्त्व क्रमशः चलते हैं। यह क्रम प्रामाणिक माना गया है। नाडी अर्थात् स्वर-प्रवाह का समय भी निश्चित किया गया है।

सार्धद्विघटिके ज्ञेयः, शुक्ले कृष्णे शशि रविः ।
वहत्येकदिने नैव, यथा षष्टिघटिक्रमात् ॥

प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति का स्वर अढ़ाई घड़ी चलता है। यह प्रकृतिगत नियम है। तत्पश्चात् स्वर की गति में स्वतः परिवर्तन घटित होने लगता है। अगर स्वर निश्चित समय का उल्लंघन कर कम या अधिक चलता है तब तत्त्व कम या अधिक समय नहीं लेते। वे तो अपने नियत समय पर बदल जाया करते हैं। जैसे इडा नाड़ी अर्थात् चन्द्र-स्वर चार घण्टे चलता है तो तत्त्व चार घड़ी में क्रमशः अदल-बदल कर बारी-बारी से चलेंगे। आकाश-तत्त्व १० पल, वायु-तत्त्व २० पल, अग्नि-तत्त्व ३० पल, जल-तत्त्व ४० पल और पृथ्वी-तत्त्व ५० पल चलने का विधान है। अब अगर कदापि इडा नाड़ी तीन घड़ी में बदल गई तब तत्त्वों का क्रम सम्यक् नहीं रह सकता; क्योंकि इडा और पिंगला के बीच १० पल सुषुम्ना का प्रवाह प्रवाहित होता है। इस दृष्टि से तत्त्वोदय में व्याघात समुपस्थित होना स्वाभाविक है। शरीर के चक्र-स्थल को आधार मानकर ही पृथ्वी-तत्त्व को प्राथमिकता प्रदान की गई है। इसलिए सर्वप्रथम पृथ्वी-तत्त्व का विवेचन करना समुचित रहेगा।

१. पृथ्वी-तत्त्व

शरीर के पृष्ठरज्जु के नीचे का छोर “शक्ति-केन्द्र” कहलाता है। ध्यान-साधना की दृष्टि से यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान है। योग में इसे मूलाधार चक्र के नाम से अभिहित किया गया है। यह चक्र शरीर में योनि अर्थात् गुदा के समीप सीवनी में सुषुम्ना के मुख में संलग्न है। यह भूलोक का प्रतिनिधित्व करता है। विद्युत का केन्द्र-स्थल एवं हमारी समग्र ऊर्जा का संग्रहालय भी यही है। विद्युत का समुत्पादन तथा प्रसारण दोनों कार्य यहीं से सम्पादित होते हैं। यह तथ्य सर्वोच्च रूप से स्वीकृत किया गया है। ऊपरी चैतन्य-केन्द्रों पर मन की एकाग्रता सध जाने से नीचे के स्नायुओं का संकोच स्वतः होने लगता है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया है। विद्युत की धारा जो निम्न गामी थी उस ऊर्जा का उर्ध्वरोहण होने लगता है। पृथ्वी-तत्त्व को अधिकृत करने हेतु इसी चक्र को माध्यम बनाकर वज्रासन में स्थित रहकर ध्यान करना अपेक्षित है। इस तत्त्व का रंग पीत, आकृति चतुष्कोण एवं गुण गन्ध हैं। इसकी कर्मेन्द्रिय गुदा और ज्ञानेन्द्रिय नासिका है। इस तत्त्व की विकृति से प्रायः शरीर में पाण्डु, कामला, हलीमक, प्लुरसी आदि रोग सम्पन्न हो जाते हैं।

पृथ्वी तत्त्व तथा उसका ध्यान

रजनी के तृतीय प्रहर के अन्त में किसी शान्त एवं एकान्त स्थान में पवित्र आसन पर सुस्थिर होकर अपने दोनों घुटनों को मोड़कर (वज्रासन) में बैठ जायें तथा दोनों हाथों को उलटाकर इस प्रकार घुटनों के ऊपर रखें कि अंगुलियों

की नोक उदर का स्पर्श करती रहे। फिर नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि को सुस्थिर कर श्वास अवलम्बन लेकर “लं” बीजाक्षर का जप करें। निम्नोक्त श्लोक इसी तथ्य को पुष्ट करता है।

“लं” बीजां धरणीं ध्यायेत् चतुरस्रां सुपीतभाम् ।
सुगन्ध - स्वर्ग - वर्णत्वमारोग्यदेहलाघवम् ॥

लं बीजाक्षर का जप इतना शक्तिशाली है कि जो व्यक्ति स्थिर चित्त होकर प्रतिदिन जप करता है, उसका शरीर स्वर्ण क्रांति के समान अतिशय द्युतिमान हो जाता है तथा देह की लाघवता और आरोग्य की उपलब्धि हो जाती है। शरीर की थकान सर्वथा दूर हो जाती है। इस संदर्भ में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि निर्भयता की प्राप्ति हेतु यह प्रक्रिया सर्वोत्तम मानी गई है। स्वरोदय शास्त्र में बीजाक्षरों के जप का अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। यह निःसंदेह कहा जा सकता है।

२. जल-तत्त्व

पेडू के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान योग की भाषा व स्वरोदय में “स्वाधिष्ठान-चक्र” है। इसे प्रेक्षा-ध्यान में “स्वास्थ्य-केन्द्र” के नाम से अभिहित किया गया है। ग्रन्थि-तंत्र की दृष्टि से यह “गोनाड्स” काम-ग्रन्थि का प्रभावक क्षेत्र है। काम ऊर्जा की अभिव्यक्ति का स्थान भी यही माना गया है। हमारे समग्र शरीर को बनाए रखने का दायित्व इस पर निर्भर है। यह चक्र मानव शरीर में “भुवः लोक” का प्रतिनिधि है। जल-तत्त्व का निवास-स्थान भी यहीं पर मान्य हुआ है। इस तत्त्व का रंग श्वेत, आकृति अर्ध चन्द्राकार एवं गुण रस है। पंच रसों का आस्वाद इसी तत्त्व के कारण संप्राप्त होता है। इस तत्त्व की ज्ञानेन्द्रिय जीभ तथा कर्मेन्द्रिय लिंग है। किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति पर जो प्रियता एवं अप्रियता के भाव प्रकट होते हैं, वे सब इसी तत्त्व के प्रतीक हैं। जननेन्द्रिय और रसना का गहरा अनुबंध है। जब जीभ को अधिक मात्रा में रस मिलता है तब कामुकता की वृद्धि को पोषण प्राप्त होता है। जिह्वा संयम एवं रस परित्याग ये दोनों जैन शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के साधक तत्त्व माने गये हैं। जीभ को “ब्रह्म-केन्द्र” भी कहा गया है क्योंकि तालु के भीतर जो छिद्र है; वह ब्रह्मनाडी का स्थान है। जिह्वा से उसका घनिष्ठतम संबंध है। इसलिए जीभ को अघर में रखकर ध्यान करना चाहिए जिससे एक अभिनव प्रकार का स्राव होता है।

जल-तत्त्व तथा उसका ध्यान

वं बीजं वरुणं ध्यायेदर्धचन्द्रशशि प्रभां ।
क्षुत्पिपासासहिष्णुत्वं जलमध्येषु मज्जनं ॥

“वं” जल-तत्त्व का बीजाक्षर है। इसका स्थिरतापूर्वक एकाग्र चित्त होकर जप करने से भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करना संभव है। सहन शक्ति का भी संवर्धन होता है। श्वेत वस्तु का चिंतन जीभ के अग्रभाग पर करने से शतप्रतिशत सफलता प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार के प्रयोग से व्यक्ति जल पर आसनी से तैरने की क्षमता पर्याप्त मात्रा में पा लेता है तथा वह जल में निमग्न भी नहीं होता। उस साधक के चेहरे पर समता परिव्याप्त हो जाती है। इसकी आकृति अर्धचन्द्राकार, रंग श्वेत, स्वाद कषाय अर्थात् कटु होता है।

३. अग्नि-तत्त्व

इस तत्त्व का निवास शरीरस्थ “मणिपूर-चक्र” माना गया है। प्रेक्षा-ध्यान में इसे “तैजस-केन्द्र” कहते हैं। यह चक्र नाभि स्थल में अवस्थित है तथा “स्वलोक” का प्रतिनिधित्व करता है। अग्नि-तत्त्व का रंग लाल, आकृति त्रिकोण एवं गुण रूप है। इसकी ज्ञानेन्द्रिय आंख, कर्मेन्द्रिय पांव है। ईर्ष्या, क्रोध, घृणा, तृष्णा, लोभ आदि वृत्तियों के उभार में यह क्षेत्र निमित्त बनता है। ज्योतिष-शास्त्र के आधार से इसे सूर्य व ऊष्मा का परिद्योतक कहा गया है। सूजन, अपचन आदि रोग इसी तत्त्व की विकृति से समुत्पन्न होते हैं। अगर इस तत्त्व पर विजय प्राप्त कर ली जाय तो उपर्युक्त आमयों में एवं वात जनित रोगोपशमन में यह तत्त्व सहायक सिद्ध हो सकता है तथा कुण्डलिनी जागरण में भी इसका अपूर्व योगदान है। ऐसा तथ्य स्वरोदय शास्त्र में उपलब्ध होता है।

अग्नि-तत्त्व तथा उसका ध्यान

“रं” बीजं शिखिनं ध्यायेत्, त्रिकोणमरुणप्रतं ।

वहन्नपानभोक्तत्वमातपाग्नि सहिष्णुता ॥

“रं” बीजाक्षर का जप “वज्रासन” में सुस्थिर होकर एकांत स्थान में करने से सर्वोच्च लाभ प्राप्त होता है। “तैजस-केन्द्र” पर पूर्ण दीप्ति, क्रांति और प्रभायुक्त अग्निदेव का ध्यान प्राणों का कुम्भक कर करना चाहिए जिससे अधिक जल एवं अधिक अन्न खाने की शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। धूप, तप, गर्मी और लू आदि को सहन करने की शक्ति का अद्भुत विकास हो जाता है तथा कष्टसहिष्णुता का प्रवर्धन भी प्रचुर मात्रा में होने लगता है। साधक के चेहरे पर अपार सौम्यता एवं समता का दिग्दर्शन होना, इस तत्त्व की विलक्षण विशेषताओं को प्रकट करता है। इस तत्त्व की सिद्धि का यह एक प्रमाण है।

४. वायु-तत्त्व

यह तत्त्व शरीर के “अनाहत-चक्र” में स्थित है। इसे प्रेक्षा-ध्यान में “आनन्द-केन्द्र” के नाम से अभिहित किया गया है। फुफ्फुस के नीचे हृदय का

पार्श्ववर्ती स्थान है। यह थायमस-ग्रन्थि का प्रभावक क्षेत्र है। डॉ. काप के मतानुसार वह ग्रन्थि शिशु जीवन के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। काम-ग्रन्थि वृषण और डिम्बाशय की क्रियाओं का निरोध करती है। वयस्क अवस्था के पश्चात् इसकी क्रियाशक्ति मन्द हो जाती है। यह तत्त्व 'महःलोक' का प्रतिनिधित्व करती है। इस तत्त्व का रंग हरा, आकृति षट्कोण और वर्तुल दोनों प्रकार की मानी गई है तथा गुण स्पर्श है। ज्ञानेन्द्रिय त्वचा एवं कर्मेन्द्रिय हाथ है। वायुगोला श्वास (दमा) एवं विकृति से होने वाले रोग इसी तत्त्व के विकार से समुत्पन्न होते हैं।

वायु-तत्त्व तथा उसका ध्यान

“यं” बीजं पवनं ध्यायेत् वर्तुलं श्यामलप्रभम् ।
आकाशगमनाद्यं च पक्षिवद् गमनं यथा ॥

“यं” बीजाक्षर का ध्यान “आनन्द-केन्द्र” पर करना चाहिए। वायु-तत्त्व हरी प्रभा वाला है। तत्त्व की साधना से व्यक्ति आकाश में पक्षी की तरह उड़ने में सक्षम हो जाता है। उसे जरावस्था कदापि उत्पीड़ित नहीं कर सकती। जिस स्थान में वायु प्रवेश नहीं करती उस स्थान में भी वह अपना सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है। उसकी तेजस्विता सतत बढ़ती रहती है तथा शक्ति संगृहीत हो जाती है। इस तत्त्व के जागृत होने पर समताभाव का संवर्धन होने लगता है।

५. आकाश-तत्त्व

यह तत्त्व शरीरस्थ “विशुद्धि-चक्र” में स्थित है। इसे स्वर-शास्त्र में “ललना-चक्र” एवं घण्टिका-चक्र भी कहते हैं। इसका मुख्य स्थान गला (कण्ठ) है। यह जनःलोक का प्रतिनिधित्व करता है। आकाश-तत्त्व का रंग श्याम व नीला दो तरह का मानते हैं। आकृति अण्डाकार और लम्बा दोनों तरह की होती है। कुछ विद्वान इसे निराकार भी कहते हैं। इसका गुण शब्द है। ज्ञानेन्द्रिय कान कर्मेन्द्रिय वाणी है।

आकाश-तत्त्व तथा उसका ध्यान

“यं” बीजं गमनं ध्यायेत् निराकारं बहुप्रभं ।
ज्ञानं त्रिकालविषय-मणिमादिकाष्टकम् ॥

“यं” बीजाक्षर का वज्रासन में स्थित होकर नीले वर्ण आकाश तत्त्व का ध्यान “ललना-चक्र” अर्थात् कण्ठ पर करना चाहिए। हमारा ध्यान ज्यों-ज्यों हृदय यानी आनन्द-केन्द्र से लेकर ऊपर के केन्द्रों पर अधिक केन्द्रित होता चला जायेगा त्यों-त्यों वे अधिक सक्रिय होते चले जायेंगे। इनकी सक्रियता एक विशिष्ट कार्य का संपादन करती है जिससे भय, आवेश, आवेग एवं अनिष्ट

भावनाएं परिसमाप्त हो जाती है। नवीन आनन्द, नई स्फूर्ति तथा नया उल्लास संप्राप्त होता है। चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण ही नहीं अपितु अध्यात्म विकास का एक सर्वोच्च साधन है। इसकी सिद्धि से साधक त्रिकालज्ञ हो जाता है। अष्ट महासिद्धियों का स्थान भी यही माना गया है। साधक को सिद्धियों के प्रलोभन में कभी नहीं फंसना चाहिए। यह आत्म-साधना में बाधक है। इस साधना का प्रमुख लक्ष्य है चित्त की निर्मलता तथा ज्ञानोपलब्धि।

षण्मुखी मुद्रा के द्वारा तत्त्वों की पहचान

अपने हाथ के दोनों अंगूठों से कान के छिद्रों को अवरुद्ध करें। मध्यमा अंगुली से नाक के छिद्रों को रोकना चाहिए। अनामिका एवं कनिष्ठा इन दोनों अंगुलियों को मुख पर रखें तथा तर्जनी अंगुली के द्वारा आंखों को बन्द करें। योगीजन इसे गोपनीय मुद्रा कहते हैं। उपर्युक्त प्रक्रिया से तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। बन्द नेत्रों से प्रकाश का रंग पहचानने का प्रयास करना चाहिए। आपको विभिन्न रंग दृष्टिगोचर होने लगते हैं। तत्त्वों की पहचान करने में निम्न रंग सहयोगी बनते हैं।

१. पीला रंग—पृथ्वी-तत्त्व का योग समझना चाहिए।
२. सफेद रंग—जल-तत्त्व का योग समझना चाहिए।
३. लाल-रंग—अग्नि-तत्त्व का योग समझना चाहिए।
४. हरा-रंग—वायु-तत्त्व का योग समझना चाहिए।
५. मिश्रित-रंग—आकाश-तत्त्व का योग समझना चाहिए।

इसका दिन में बार-बार अभ्यास करना चाहिए जिससे आपको तत्त्वों की अच्छी पहचान हो जायेगी। स्वरोदय शास्त्र में इसका सर्वाधिक महत्त्व है।



८. लेश्या-ध्यान एवं तत्त्व विश्लेषण

जब चैतन्य के स्पन्दन कषाय वलय को पार कर अध्यवसाय के रूप में बाहर आते हैं वे लेश्या-तंत्र के साथ मिलकर भावधारा बन जाते हैं। लेश्या एवं पंच तत्त्व का जब हम विश्लेषण करते हैं तब हमें यह तथ्य प्राप्त होता है कि लेश्या-प्राणी की “ओरा” का नियामक तत्त्व है। स्वरोदय के पंच तत्त्व के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जैसे-जैसे तत्त्वों का समय बदलता है वैसे-वैसे “ओरा” के रंग में भी परिवर्तन घटित होने लगता है। तत्त्वों के पांच रंग हैं—काला, पीला, लाल, हरा और सफेद। व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में लेश्या एवं तत्त्व का योगदान है। अगर लेश्या अच्छी होगी तो व्यक्तित्व भी अच्छा होगा। लेश्या अगर बुरी होगी तो व्यक्तित्व भी वैसा ही होगा। हमें स्थूल से सूक्ष्म तक पहुंचने के लिए तत्त्वों का सहारा लेना अत्यन्त अपेक्षित है। रंगों का प्रादुर्भाव तत्त्वों के आधार पर ही होता है। ये हमारे व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। रंग चित्त को बहुत प्रभावित करता है। हमारा समग्र जीवन-तंत्र रंगों के आधार पर चलता है। वैज्ञानिकों ने अनुसंधान किया है कि व्यक्ति के अंतर्मन को, अवचेतन-मन को तथा मस्तिष्क को प्रभावित करने वाला रंग ही है।

नाड़ी-ग्रंथि-तंत्र पर रंगों का प्रभाव

प्रो. एलेग्जेंडर सोस की मान्यता है कि रंग विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा किसी अज्ञात रूप से हमारी पिच्यूटरी और पीनियल ग्रंथियों एवं मस्तिष्कीय गहराई में विद्यमान हाईपोथेलेमस को प्रभावित करता है। वैज्ञानिकों के अनुसार हमारे शरीर के ये अवयव अन्तःस्त्रावी ग्रंथि-तंत्र का नियमन करते हैं। प्रयोगों के द्वारा ऐसे प्रमाण भी उपलब्ध हुए हैं कि जो प्रकाश हमारी आंखों के दृष्टि पटल पर टकराता है वह हमारी पीनियल ग्रंथि से निकलने वाले मेलाटोनिन नामक हार्मोन एक अन्य सेराटोनिन नामक तंत्रिका संचारी (Neuro-Transmitter) की मात्रा का उत्पादन का निर्णय करने में सहायक होता है। दुनिया का हर पदार्थ चेतन और अवचेतन अपने आकार में रश्मियों का विकीरण करता है। ये रश्मियां विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा या तरंग के रूप में होती हैं। निकलने वाली इस ऊर्जा से आभामंडल निर्मित होता है। कोई भी पदार्थ, कोई भी अस्तित्व दुनिया में ऐसा नहीं है जिससे वह विकिरण न होता है।

जीवन्त प्राणी में विद्युत-चुम्बकीय ऊर्जा के साथ प्राण-ऊर्जा भी निकलती रहती है। अतः उनका आभामंडल तेजस्वी, गतिशील और ज्योतिर्मय होता है

जबकि निर्जीव पदार्थ में यह फीका और स्थिर प्रकाश वाला होता है। जीवन्त प्राणी का आभामंडल एक रूप नहीं रहता, बदलता रहता है। निर्मलता, मलिनता, संकोच और विस्तार ये सारी अवस्थाएं उसमें घटित होती रहती हैं। यह इसलिए होता है कि उसको बदलने वाला लेश्या-तंत्र, भाव-तंत्र भीतर विद्यमान है। बुरी आदतों को उत्पन्न करने वाली तीन लेश्याएं हैं—स्वाधिष्ठान-चक्र, मणिपूर-चक्र और अनाहत चक्र। तथा विज्ञान की भाषा में एड्रीनल और गोनेड्स ये दो ग्रन्थियां हैं। इन तीनों के प्रतिपादनों में सर्वाधिक समानता परिलक्षित होती है। जब हम अध्यात्म की यात्रा का प्रारम्भ करते हैं तब तेजो लेश्या से ही प्रारम्भ होता है। इसका रंग बाल-सूर्य जैसा है।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर के चारों ओर एक आभामंडल होता है। उसके रंग भाव-परिवर्तन के साथ बदलते रहते हैं। भाव और आभामंडल का गहरा सम्बन्ध है। हम भाव-शुद्धि के द्वारा आभामंडल को विशुद्ध बना सकते हैं तथा इसकी विशुद्धि से भावों की विशुद्धि को जाना जा सकता है।

लेश्या और रंगों का ध्यान

१

आनन्द-केन्द्र—हरे रंग का ध्यान।
अनुचिंतन—भाव धारा निर्मल हो रही है। तीन बार।

२

विशुद्धि-केन्द्र—नीले रंग का ध्यान।
अनुचिंतन—वासनाएं अनुशासित हो रही हैं। तीन बार।

३

दर्शन-केन्द्र—अरुण रंग का ध्यान।
अनुचिंतन—अन्तर्दृष्टि जाग रही है,
आनन्द जाग रहा है। तीन बार।

४

ज्ञान-केन्द्र—पीले रंग का ध्यान।
अनुचिंतन—ज्ञान तन्तु विकसित हो रहे हैं। तीन बार।

५

ज्योति-केन्द्र—श्वेत रंग का ध्यान।
अनुचिंतन—आवेश और आवेग शांत हो रहे हैं।
क्रोध शांत हो रहा है। परम शांति मिल रही है।
—प्रेक्षा-ध्यान प्रयोग पद्धति से

९. राशि चक्र एवं यौगिक क्रियाएं

समय की सार्थकता को ध्यान में रखते हुए प्राचीन ऋषि महर्षियों ने अपने ज्ञान-बल से अवगत किया है कि "राशि-चक्र" के आधार से की जाने वाली यौगिक-क्रियाएं १०-१५ मिनट में ही स्वास्थ्य में अद्भुत लाभ करा देती हैं। घण्टों भर व्यायाम करने की कोई अपेक्षा नहीं है। इसका उन्होंने विशद विवेचन करते हुए लिखा है कि सूर्य से जो प्राण-शक्ति पृथ्वी तल पर फैलती है उसका हमारे शारीरिक अंग-प्रत्यंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा उस अनुपम शक्ति को हम किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं। इसकी वास्तविक जानकारी करना अत्यंत आवश्यक है। वर्ष के बारह महीनों पर बारह राशियां अपना भिन्न-भिन्न प्रभाव प्रकट करती हैं। इसलिए सौर वर्ष बारह राशियों की अपेक्षा से बारह भागों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक राशिचक्र का गुण और प्रभाव एक दूसरे से अपेक्षाकृत कुछ-कुछ भिन्नता रखता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह बतलाया गया है कि किस राशि और सौर मास का सूर्य प्रकाश मानव शरीर के किस अंग को विशेष रूप से प्रभावित करता है। यदि उस मास में उस अंग के व्यायाम पर विशेष ध्यान दिया जाए तो सूर्य के प्राण-तत्व का सर्वाधिक लाभ उठाया जा सकता है जिससे स्वास्थ्य की सर्वतोमुखी प्रगति की विकास किरण प्रस्फुटित हो सकती है।

सौर मास और राशियां—

१. सौर मास के आधार पर चैत्र मास का सूर्य मीन राशि पर रहता है। इसका सम्बन्ध सिर और पांव से अधिक रहता है।

प्रयोग-विधि

एडियां परस्पर मिली हुई हों तथा पंजे कुछ फैले हुए रहें। इस स्थिति में खड़े रहना चाहिए। फिर दोनों हाथों को सीध में फैलाना चाहिए। हाथ की मुट्टी को इस प्रकार फैलाना चाहिए कि जिससे मांसपेशियां तन जाएं। ततपश्चात् श्वास को धीरे-धीरे भरते हुए दोनों हाथों को मस्तिष्क पर इस प्रकार मोड़ें कि दोनों हाथों की मुट्टियां परस्पर मिल जाएं। फिर श्वास का शनैः शनैः रेचन कर दीजिए तथा मांसपेशियों को शिथिल करते हुए पूर्व स्थिति में जाएं। इस प्रक्रिया से पांच या दस मिनट में ही मुख एवं मस्तिष्क का रक्ताभिसरण सक्रिय होने लगता है तथा शरीर के प्रत्येक स्नायु में सक्रियता परिव्याप्त हो जाती है। शरीर में शक्ति संचार के स्रोत का प्रस्फुटन निःसंदेह होने लगता है। इस प्रक्रिया में शरीर के अवयवों पर दबाव डालने का उतना

महत्त्व नहीं है जितना महत्त्व मांसपेशियों के प्रसारण एवं आकुंचन से है।

२. बैशाख-मास का सूर्य मेष राशि पर रहता है। इसका अधिक प्रभाव गर्दन पर पड़ता है एवं इसकी बीमारी को शांत करता है।

प्रयोग-विधि

दोनों हाथों को कन्धों की सीध में फैलाकर मुट्टी बांधकर तान लीजिए। फिर श्वास का पूरक करते हुए दोनों हाथों को वक्षस्थल की सीध में ले आएँ। पूरक एवं रेचक की विधि का सम्यक् ज्ञान करना अपेक्षित है। व्यायाम के समय इस प्रकार की भावना करें कि गर्दन के परमाणु सशक्त हो रहे हैं। तथा नवी प्राण शक्ति का संचार हो रहा है।

३. वृषभ-राशि का सम्बन्ध फेफड़ों, कन्धों तथा भुजाओं से है। इसका अधिकार जेठ मास पर है।

प्रयोग-विधि

अपने दोनों हाथों को पूर्ववत् फैलाकर तान लीजिए। कोहनी से मोड़कर दोनों मुट्टियों को कन्धों पर लाते हुए श्वास का पूरक करें। फिर हाथों को घुटनों की तरफ शनैः शनैः फैलाते समय रेचक करें। साथ-साथ यह भावना करें कि फेफड़ों, कन्धों और भुजाओं में नवीन शक्ति अभ्युदय हो रहा है तथा रोग का उपशमन हो रहा है।

४. आषाढ़ मास पर म्निथुन-राशि का अधिकार है। इसका सम्बन्ध आमाशय, पक्वाशय, यकृत (लीवर) तथा उदर के विभिन्न पाचन सम्बन्धी यंत्रों से है।

प्रयोग-विधि

सीधे खड़े होकर कटि-प्रदेश को इतना झुकाइए कि दोनों हथेलियाँ पैरों के पंजों के निकट पहुंच जाएँ। धड़ तथा पैरों के बीच समकोणाकृति बन जाए। अब कटि प्रदेश को यथावस्थित रखते हुए दोनों हाथों को ऊपर की ओर ले जाइए। फिर पीठ पर दोनों हाथों का परस्पर मिलान करें। हाथों को ऊपर की ओर ले जाते हुए पूरक एवं नीचे की ओर लाते हुए रेचक करें। साथ-साथ शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि हेतु शुद्ध-भावना करें।

५. श्रावण-मास पर कर्क-राशि का अधिकार है। इसका संबंध हृदय, पीठ एवं रीढ़ की हड्डी से है।

प्रयोग-विधि

सीधे खड़े होकर कटि के ऊपरी भाग को दाईं से बाईं ओर एवं बाईं से दाईं ओर जहां तक बन सके झुकाएं। फिर पीठ के बल लेटकर दस से

बारह बार पूरक एवं रेचक करें। साथ-साथ इस प्रकार की भावना से मन को भावित करें कि हृदय, पीठ और रीढ़ की हड्डी का संस्थान बलवान होता जा रहा है। इन समय अवयावों में यथोचित मात्रा में प्राण-शक्ति प्राप्त हो रही है।

६. भाद्रव-मास पर सिंह-राशि का अधिकार है। इसका संबंध उदर के निम्न भाग तथा अंतड़ियों से अधिक है।

प्रयोग-विधि

सीधे खड़े होकर, मुट्टी बांधकर हाथों का तनाव की स्थिति में रखिए, फिर श्वास रेचन करें। तत्पश्चात् कुम्भक की अवस्था में उदर को आगे-पीछे ले जाने की क्रिया आठ-से-दस बार करें। इससे पाचन-तंत्रों तथा मल निष्कासन करने वाली आंतों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।

७. आश्विन मास पर कन्या-राशि का अधिकार है। इसका सम्बन्ध गुदों तथा कटि प्रदेश के निम्न भाग से है।

प्रयोग-विधि

सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को मस्तक के ऊपर तान लीजिए। हाथों को ऊपर ले जाते समय पूरक की क्रिया करें। तत्पश्चात् कमर को नीचे झुकाते हुए हाथों से पैरों के अंगूठे को छूने का प्रयत्न करें। धीरे-धीरे ऊपर आते हुए श्वास का रेचन करें। साथ-साथ भावना करें कि गुदों और कटि प्रदेश से नीचे के भाग में प्राण-शक्ति का संचार द्रुत गति से हो रहा है।

८. कार्तिक-मास पर तुला-राशि का अधिकार है। इसका सम्बन्ध स्त्रियों की बीमारी से अधिक जुड़ा हुआ है।

प्रयोग-विधि

सीधे खड़े होकर मुट्टी कस कर दाहिने पैर को दस इंच ऊपर उठा लीजिए; किंतु घुटना जरा भी मुड़ने न पाए। उसे बाएं पैर की तरफ ले जाएं। वहां से चक्राकार घुमाते हुए जहां तक ला सकें दायीं ओर ले आएं। गर्दन और बांया पैर यथास्थान रहे। इसी प्रकार बाएं पैर को चक्राकार घुमाते हुए पूरक करें। पुनः यथास्थान पर लाते हुए रेचक करें। यह क्रिया अतिशय आसान है। साथ-साथ यह भावना भी करें कि रोग निर्मूल हो रहा है। शरीर स्वस्थ हो रहा है।

९. मार्गशीर्ष-मास पर वृश्चिक-राशि का अधिकार है। कूल्हों और जंघा से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

प्रयोग-विधि

श्वासन में लेटकर दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिलाकर

वक्षस्थल पर रखिए। पूरक करते समय दोनों पैरों को सीधा तान लीजिए। तत्पश्चात् मस्तक को अठारह या बीस इंच भूमि से ऊंचा उठाएं तथा पैरों को सिर की सीध में रखें। पैरों को नीचे लाते समय रेचक करें। दोनों हाथों को तकिए की तरह मस्तक के नीचे रखें। सिर को बिलकुल न हिलाएं। पैरों को ऊपर उठाकर समकोण बनाने का प्रयास करें। इसका अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते पांच मिनट से प्रारम्भ कर आधा घंटा पर्यन्त कर सकते हैं। कूल्हों तथा जंघा में प्राण-शक्ति का संचार हो रहा है, ऐसी भावना करनी चाहिए।

१०. पौष-मास पर धन-राशि का अधिकार है। इसका अधिक सम्बन्ध घुटनों एवं टांगों से है।

प्रयोग-विधि

सीधे खड़े होकर पैरों को खूब तान लीजिए। कूल्हों को कसकर पैरों की मांसपेशियों को इस प्रकार ऊपर की ओर खींचिए कि पैर भूमि से दो या तीन इंच ऊपर उठ जाए। पैरों को उठाते समय श्वास का पूरक करें तथा नीचे लाते समय रेचक करें। भावना करें कि घुटनों एवं टांगों में प्राण-शक्ति का संचार हो रहा है।

११. माघ-मास पर मकर राशि का अधिकार है। इसका सम्बन्ध टखनों, गिट्टों और पांव के पंजों से है।

प्रयोग-विधि

शरीर को तान कर मुट्ठी बांधकर खड़े हो जाएं। पैरों की एड़ियों को ऊंची रखकर पंजों के बल पर घुटनों को मोड़कर स्थिर बैठने का प्रयत्न करें। शरीर को नीचे झुकाते हुए पूरक करें तथा ऊपर उठाते समय रेचक करें। टखनों, गिट्टों एवं पंजों में प्राण-शक्ति का संचार हो रहा है। प्रयोग के समय ऐसी भावना करें।

१२. फाल्गुन-मास पर कुंभ राशि का अधिकार है। इसका सम्बन्ध पैर के समस्त भाग से है।

प्रयोग-विधि

शरीर को चारपाई की भांति फैला लीजिए। करतल एवं पैर के अंगूठे के अतिरिक्त शेष शरीर का भाग भूमि को न छुए। तत्पश्चात् कोहनी को मोड़ते हुए शरीर को इतना झुकाएं कि टुट्टी पृथ्वी का स्पर्श कर सके। किन्तु घुटने और उदर भूमि से ऊंचे रहें। शरीर को नीचे झुकाते समय पूरक करें। शरीर को ऊपर उठाते समय श्वास का रेचन करें। पैर के समग्र भाग में एवं नीचे के स्नायु संस्थान में प्राण-शक्ति का संचार हो रही है। ऐसी भावना करनी चाहिए। इस प्रकार के चिन्तन से रोगोपशमन में सहायता मिलती है।

१०. स्वरोदय तत्त्वों की निश्चित अवधि

स्वरोदय शास्त्र में प्रायः ऐसा वर्णन उपलब्ध होता है कि अढ़ाई घड़ी में पांचों तत्त्वों का उदय क्रमशः हो जाता है। प्रत्येक तत्त्व उदय होने के बाद कितने समय तक विद्यमान रहता है, उस कालावधि को निम्नोक्त चार्ट से समझाना चाहिए।

| नाम | पल | निश्चित कालावधि (मिनट) |
|------------------|----|------------------------|
| १. पृथ्वी-तत्त्व | ५० | २० |
| २. जल-तत्त्व | ४० | १६ |
| ३. तैजस-तत्त्व | ३० | १२ |
| ४. वायु-तत्त्व | २० | ८ |
| ५. आकाश-तत्त्व | १० | ४ |

सर्व तत्त्वों का योगफल १५० पल (६० मिनट = एक घण्टा) अर्थात्—अढ़ाई घड़ी इसका सही परिमाण है।

तत्त्व दर्शन तालिका

विभिन्न तत्त्वों के स्थान, गुण, रंग, स्वाद और श्वास की गति के सम्बन्ध में निम्न तालिका द्वारा सहज ही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है :

| क्र.सं. | तत्त्व का नाम | स्थान | आकृति | गुण | रंग | स्वाद | श्वास की गति | श्वास का प्रमाण | पल | मिनट |
|---------|---------------|-------------------------------|---------------------------|--------|-----------------|-------|----------------------------|-----------------|----|------|
| १. | पृथ्वी तत्त्व | मूलाधार शक्ति केन्द्र | चतुष्कोण | गंध | पीत | मधुर | नासाछिद्र के मध्य भाग में | बारह अंगुल | ५० | २० |
| २. | जल तत्त्व | स्वाधिष्ठान स्वास्थ्य-केन्द्र | अर्द्ध चन्द्राकार | रस | श्वेत (सफेद) | कषाय | नासाछिद्र के निम्न भाग में | सोलह अंगुल | ४० | १६ |
| ३. | तेज तत्त्व | मणिपूर तैजस-केन्द्र | त्रिकोण | रूप | रक्त (लाल) | तिक्त | नासाछिद्र के ऊपरी भाग में | चार अंगुल | ३० | १२ |
| ४. | वायु तत्त्व | अनाहत आनन्द-केन्द्र | षट्कोण अथवा गोल | स्पर्श | हरित या मेघवर्ण | अम्ल | नासाछिद्र के एक किनारे | आठ अंगुल | २० | ८ |
| ५. | आकाश तत्त्व | विशुद्धि चक्र घटिका-चक्र | अण्डाकार या बिन्दु-बिन्दु | शब्द | विभिन्न रंग | कटु | आवर्त घूम-घूम कर चलना | बीस अंगुल | १० | ४ |

स्वर-तत्त्व एवं नक्षत्र

| | |
|---|--|
| १. घनिष्ठा | ८. पूर्वाषाढा |
| २. रोहिणी | ९. अश्लेषा |
| ३. अनुराधा | १०. मूल |
| ४. जेष्ठा | ११. आर्द्र |
| ५. श्रवण | १२. रेवती |
| ६. अभिजित | १३. उत्तरा भाद्रपद |
| ७. उत्तराषाढा | १४. शतभिषा |
| उपर्युक्त सात नक्षत्रों का स्वामी पृथ्वी-तत्त्व है | इन सात नक्षत्रों का स्वामी जल-तत्त्व है |
| १५. भरणी | २२. विशाखा |
| १६. कृत्तिका | २३. उत्तरा फाल्गुनी |

१७. पुष्य

१८. मघा

१९. पूर्वा फाल्गुनी

२०. पूर्वा भाद्रपद

२१. स्वाती

इन सातों नक्षत्रों का
स्वामी अग्नि-तत्त्व है

२४. हस्त

२५. चित्रा

२६. पुनर्वसु

२७. अश्विनी

२८. मृगशिरा

इन सात तत्त्वों का
स्वामी वायु तत्त्व है ।

स्वर-तत्त्व एवं तिथि बल

एकम, छठ, ग्यारस और नन्दा तिथि के समय अग्नि-तत्त्व बलवान माना गया है । दूज, सातम, बारस और भद्रातिथि में जल-तत्त्व बलवान होता है । तीज, आठम, तेरस और जया तिथि की उपस्थिति में पृथ्वी-तत्त्व बलवान रहता है । चौथ, नवमी, चवदस और रिक्ता तिथि के समय आकाश-तत्त्व को बलवान माना गया है । पंचमी दसमी, पूर्णिमा और पूर्णा तिथि में वायु-तत्त्व को बलवान समझना चाहिए । कार्य की सफलता और असफलता में इन तिथियों के अनुसार ही ये तत्त्व फल प्रदान करते हैं । इन तिथियों के साथ इन-इन तत्त्वों का सम्बन्ध समझना चाहिए ।

स्वर-तत्त्व में ग्रहों की स्थिति

जब दक्षिण नासिका से श्वास का प्रवाह प्रवाहित हो रहा हो, उस समय अग्नि-तत्त्व में मंगल, पृथ्वी-तत्त्व में सूर्य, जल-तत्त्व में शनि और वायु-तत्त्व में राहु की स्थिति का उदय समझना चाहिए।

जब वाम-नाड़ी से चन्द्र-स्वर प्रवाहित हो रहा होता है तब जल-तत्त्व में चन्द्र और पृथ्वी-तत्त्व में बुध, वायु तत्त्व में वृहस्पति और अग्नि तत्त्व में शुक्र ग्रह की उपस्थिति समझनी चाहिए।

जब शम्भु-स्वर अर्थात् सुषुम्ना-स्वर चल रहा हो तब पृथ्वी-तत्त्व में बुध, जल-तत्त्व में चन्द्र और शुक्र, अग्नि-तत्त्व में सूर्य और मंगल, वायु-तत्त्व में राहु और शनि तथा आकाश-तत्त्व में वृहस्पति की उपस्थिति समझनी चाहिए। जितना-जितना ज्योतिष शास्त्र विश्व में प्रचलित है वह सब स्वरोदय के तत्त्वों पर आधारित है।

स्वर-तत्त्व गुण और बल

१. अस्थि, मांस, त्वचा और रोम—ये पृथ्वी-तत्त्व के गुण हैं।
२. शुक्र, शोणित, मज्जा और मूत्र—ये जल-तत्त्व के गुण हैं
३. क्षुधा, तृषा, निद्रा, क्रान्ति और आलस्य—ये अग्नि-तत्त्व के गुण हैं।
४. चलना, भागना, गांठना, संकोच और प्रसारण करना—ये वायु-तत्त्व के गुण हैं।
५. लज्जा, राग-द्वेष, भय और मोह ये आकाश-तत्त्व के गुण हैं।

पूर्व दिशा में पृथ्वी-तत्त्व का बल रहता है। पश्चिमी दिशा में जल-तत्त्व का बल रहता है। दक्षिण-दिशा में अग्नि-तत्त्व का बल रहता है तथा उत्तर दिशा में वायु-तत्त्व के बल की प्रधानता मानी गई है।

तत्त्वों की उपस्थिति में लाभालाभ का प्रश्न

पृथ्वी-तत्त्व के उदय-काल में अगर कोई व्यक्ति प्रश्न करे तब प्रत्युत्तर ऐसा कहना चाहिए कि चिर काल से लाभ प्राप्त होने की संभावना है। जल-तत्त्व के उदय काल में अविलंब लाभ की प्राप्ति का संकेत है। अग्नि-तत्त्व के उदय-काल में सिद्ध हुआ कार्य भी बिगड़ जाता है। वायु-तत्त्व के उदय काल में स्वल्प लाभ की प्राप्ति की सूचना मिलती है। आकाश-तत्त्व के उदय-काल में किसी सांसारिक कार्य का शुभारम्भ नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह तत्त्व संसार की दृष्टि से अनिष्ट फल प्रदाता कहा गया है। इसमें अध्यात्म साधना करने का विधान है। तत्पश्चात् सूर्य और चन्द्र स्वर के सुस्थिर होने पर उसमें

उदय होने वाले तत्त्व का गहराई से अनुचिन्तन करें कि कौन-कौन से तत्त्व का उदय हुआ है। तत्त्व सिद्धि दाता है अथवा असिद्धि प्रदाता, इसकी सम्यक् पहचान करनी चाहिए। स्वर की अस्थिरता में तत्त्वादि का चिन्तन करना हितप्रद नहीं है, क्योंकि ऐसी स्थिति में मिश्रण तत्त्व की पहचान नहीं हो पाती। स्वर की स्थिरता में तत्त्व चिन्तन करने से इष्ट सिद्धि महालाभ एवं विजय की प्राप्ति होती है। स्वरोदय शास्त्र वेत्ताओं ने इस प्रकार के समाचरण का विधान स्थान-स्थान पर किया है।

ऋतु एवं संक्रान्ति सम्बन्ध

स्वरोदय के अनुसार दिन और रात्रि में बारह संक्रान्तियां होती हैं। संक्रान्ति का विवेचन इस प्रकार किया गया है। जिस समय स्वर परिवर्तित होता है उस समय को संक्रान्ति कहते हैं। इसमें १ वृषभ, २ कर्क, ३ कन्या, ४ वृश्चिक, ५ मकर और ६ मीन का अधिपति चन्द्र है। ७ मेष, ८ सिंह, ९ कुम्भ, १० तुला, ११ मिथुन और १२ धन की संक्रान्ति का स्वामी सूर्य है। ऋतुएं छह हैं तथा संक्रान्तियां बारह हैं। एक ऋतु दो-दो संक्रान्ति पर अपना अधिपत्य रखती है। इन ऋतुओं का मानव शरीर में होने वाले वात, पित्त और कफ का सम्बन्ध प्रकृति से ही अनुबन्धित है। जो साधक ध्यान साधना करना चाहता है उसको ऋतुओं, संक्रान्तियों एवं वात, पित्त और कफ का ज्ञान करना अत्यन्त अनिवार्य है। ऋतुओं का शरीर पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है।

१. ग्रीष्म-ऋतु

यह मेष और वृष संक्रान्ति पर अपना अधिकार रखती है।

२. शरद-ऋतु

यह तुला और वृश्चिक पर अपना पूरा अधिकार रखती है। उपर्युक्त दो ऋतुओं में पित्त का अधिक प्राबल्य रहता है इसलिए पित्तवर्धक पदार्थों का सेवक साधक के लिए हितकर नहीं है। प्रावृत्, वर्षा और हेमन्त इन तीन ऋतुओं का तथा मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, धन और मकर इन छह संक्रान्तियों का अधिपति वात है। इन संकेतित छह महीनों में वातकारक पदार्थों का सेवन वर्जनीय है। वसन्त ऋतु में और कुम्भ तथा मीन की संक्रान्ति में कफ का अधिक्य रहता है इसलिए कफवर्धक वस्तुओं का सेवन वर्जनीय एवं त्याज्य है। अन्य व्यावहारिक ज्ञान के साथ साधक को खाद्य पदार्थों तथा ऋतुओं का ज्ञान करना अत्यन्त अपेक्षित है। आयुर्वेद शास्त्र में मुख्य तीन दोषों की विवेचना की गई है। सन्निपात को कदाचित्क दोष माना गया है। इन दोषों में स्वाभित्त्व का विभाजन किया गया है। वात और पित्त का स्वामी सूर्य, कफ का स्वामी चन्द्रमा और सन्निपात का स्वामी शम्भु अर्थात् सुषुम्ना है।

स्वरोदय और लग्न-विचार

१. यह इड़ा अर्थात् चन्द्र-स्वर की लग्न का विवेचन किया गया है। बारह राशियों में ये चार राशियां वृषभ, सिंह, कुम्भ और वृश्चिक इड़ा है स्वर की लग्न है। यह स्थिर कार्य के लिए उपयोगी है।

२. पिंगला अर्थात् दक्षिण-नाडी सूर्य स्वर के लग्न के साथ मेष, कर्क, तुला और मकर ये चार राशियां जुड़ी हुई हैं। जो चर कार्य में अपना सहयोग प्रदान करती हैं।

३. शम्भु अर्थात् सुषुम्ना-स्वर कार्य सिद्धि में विघ्न रूप है। मिथुन, कन्या, धन और मकर ये चार राशियां सुषुम्ना-स्वर की हैं। इन लग्नों में चर एवं स्थिर कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए।

लग्न के दोहे

१. चन्द्र-लग्न

वृश्चिक सिंह वृष कुम्भ युत, बाएं स्वर के संग।
चन्द्र-स्वर को मिलता है, थिर कारज प्रसंग ॥

२. सूर्य-लग्न

कर्क मेष तुला मकर, चारों चरती रास।
सूरज सों चारों मिलत, चर कारज प्रकाश ॥

३. सुषुम्ना-लग्न

मीन मिथुन कन्या कही, चौथी है धन मीत।
द्वि स्वभाव की सुषुम्ना, अनुभव यही पुनीत ॥



११. स्वरोदय और वर्ष फल विज्ञान

१. चैत्र मास की सित पक्ष की प्रतिपदा तिथि चन्द्र वर्ष का प्रारम्भिक समय माना गया है। इस मंगल बेला में तथा दक्षिणायन और उत्तरायण के शुभारम्भ होने के समय में विचक्षण व चिन्तनशील व्यक्तियों को तत्व साधना के भेदाभेद का गहराई से परीक्षण करना अत्यन्त अपेक्षित है। यदि उस समय वाम नासा छिद्र से श्वास बह रहा हो, उसमें जल-तत्त्व एवं पृथ्वी-तत्त्व का उदय हुआ हो तो निश्चित समझना चाहिए कि पृथ्वी पर सुकाल होने की संभावना प्रकट करता है। ऐसा स्वरोदयवेत्ताओं का संकथन है। यदि उस समय अग्नि-तत्त्व अथवा आकाश-तत्त्व का उदय हुआ हो तो भीषण भय और घोर दुर्भिक्ष की सूचना देता है। सुषुम्ना-स्वर के स्वर के श्वास प्रवाह काल में महारोग पीड़ा यंत्रणा और शुभ कार्य के विनाश की संसूचना का संकेत देता है।

२. मेष संक्रान्ति महाविषुवत् संक्रान्ति के दिन प्रातःकाल पृथ्वी-तत्त्व का उदय हो तब अच्छी वृष्टि, राज्य-वृद्धि, सुभिक्ष, सुख, सौभाग्य की सतत अभिवृद्धि की प्रेरणा प्राप्त होती है तथा भूमि भी शस्य-श्यामला एवं धन-धान्य से परिपूर्ण बनी रहती है। जल-तत्त्व का भी उपर्युक्त फल समझना चाहिए। अगर अग्नि-तत्त्व या वायु-तत्त्व का उदय हो तब उत्पात, राष्ट्र विप्लव-भय, अतिवृष्टि और अनावृष्टि की आशंका बनी रहती है। स्वरोदय शास्त्र में इसका सुस्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है।

पूर्व प्रवेशने श्वासे स्व-स्व तत्त्वेन सिद्धिदः

मेष संक्रान्ति के समय जिस नासिका से वायु अर्थात् श्वास चल रहा हो और वह परिपूर्ण हो तथा निःश्वास वायु प्रवेश करता हो, शुभ-तत्त्वों का उदय हो तब यह समझना चाहिए कि कार्य की सिद्धि सुनिश्चित है।

सूर्य संक्रान्ति के प्रकार तथा फल

सूर्योदय के समय संक्रान्ति लगे तब वह विषवती कहलाती है तथा प्रजा में दुःख क्लेश एवं विपत्ति पैदा होने की संभावना बनी रहती है।

मध्याह्न के समय में संक्रान्ति लगे तो सर्व धान्य की महंगाई व खेती के विनाश की संसूचना देती है। सूर्यास्त के समय संक्रान्ति लगे तो धान्य की महंगाई एवं धान्य की अभिवृद्धि की भी संभावना है। अर्धनिशा में संक्रान्ति लगे तब दुःख का नाश होता है तथा सुभिक्ष-कारक है। बहुत से व्यक्तियों की अवधारणा है कि समग्र वस्तुओं में भावों की समानताएं बनाए रखती है।

वर्ष फल जानने की द्वितीय-विधि

पृथ्वी-तत्व

चेत्र सुदी प्रतिपदा को वर्ष का प्रारम्भिक दिन माना जाता है। साधक अपनी प्राणधारा को पूर्णतया स्थिर कर चिन्तन करना सर्वाधिक हितकर रहेगा। अगर प्रातःकाल चन्द्र-स्वर में पृथ्वी-तत्व प्रवाहित हो रहा है। तब यह समझना अत्यन्त अपेक्षित है कि यह वर्ष अति सुखदायक रहेगा। वर्षा बहुत होने की संभावना है। राजा-प्रजा भय एवं कष्ट से सर्वथा मुक्त रहेंगे। सब प्रकार से वर्ष और सुख परिव्याप्त रहेगा किसी प्रकार का कोई उत्पात नहीं होगा यह समझना अपेक्षित है।

जल-तत्व

यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र-स्वर में जल-तत्व प्रवाहित हो रहा हो तो समझना चाहिए कि इस वर्ष सुभिक्ष होगा। देश विदेशों में उत्तम वृष्टि की संभावना है। प्रजा में शान्ति एवं धर्म के प्रति अनुराग तथा हृदय में आनन्द का अनुभव होने लग जायेगा। दान देने की भावना का उद्भव होने का संकेत देता है। अब यहाँ एक विशेष तथ्य समझना अपेक्षित है कि अगर पृथ्वी-तत्व एवं जल-तत्व दोनों प्रातःकाल सूर्य-स्वर में प्रवाहित हो तो वर्ष का फल मध्यम रहेगा।

अग्नि-वायु और आकाश-तत्व

यदि उस दिन प्रातःकाल चन्द्र-स्वर अथवा सूर्य-स्वर में तीनों तत्व प्रवाहित हो तो उनका फल मध्यम समझना चाहिए। पूर्व वर्णित मेष-संक्रान्ति के अनुरूप समझना चाहिए। अगर इन दोनों स्वरो में आकाश-तत्व चले तो यह निश्चित है कि राजभंग प्रजा में दुख की उत्पत्ति एवं देश में दुष्काल होने की संभावना को प्रकट करता है।

सुषुम्ना-स्वर

यदि सुदी प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल सुषुम्ना-स्वर में प्राण की धारा प्रवाहित हो तो वर्षफल देखने वाले व्यक्ति की मृत्यु एवं छत्र भंग की सूचना देता है। अन्न की उत्पत्ति कहीं कम कहीं अधिक और कहीं बिल्कुल भी अन्न उत्पन्न नहीं होगा ऐसा समझना चाहिए।

वर्ष फल जानने की तृतीय-विधि

यदि माघ शुक्ला सप्तमी को और वैशाख शुक्ला तीज को प्रातः काल चन्द्र-स्वर में पृथ्वी-तत्व एवं जल-तत्व चले तो देश में सर्वत्र सुख एवं शान्ति परिव्याप्त हो। तथा सुभिक्ष और श्रेष्ठ फलप्रद है। अगर अग्नि वायु और आकाश-तत्व, चन्द्र-स्वर में चले तो अनिष्ट फल की सूचना देते हैं। यदि सूर्य-स्वर में पृथ्वी-तत्व जल-तत्व प्रवाहित हो तो साधारण फल समझना चाहिए। यदि सूर्य-स्वर में अग्नि वायु और आकाश-तत्व प्रवाहित हो तो मध्यम फल जानना चाहिए। सब महीनों में वैशाख के महीने को बलावान माना गया है। अतः उस महीने की संक्रान्ति में पांचों-तत्वों पर गहराई से चिन्तन करना आवश्यक है।

अपने शरीर कुटुम्ब और धनादि का विचार—

यदि चैत्र मास की सुदी एकम को अपना चन्द्र-स्वर न चले तो यह इस तथ्य का परिधोतक है कि तीन मास के भीतर चिन्ता एवं क्लेश की उत्पत्ति होने की संभावना है। यदि चैत्र मास की दूज को अपना चन्द्र स्वर न चले तो। यह इस बात को प्रकट करता है कि परदेश गमन करना पड़ेगा और वहाँ भारी दुःख भोगना होगा।

यदि चैत्र मास की सुदी तीज के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो समझना चाहिए कि शरीर में गर्मी, पित्त, ज्वर आदि रोगों के समुत्पन्न होने की संभावना सतत बनी रहती है।

यदि चैत्र सुदी चौथ के दिन प्रातः काल अपना चन्द्र स्वर न चले। तो नव मास के भीतर अपनी मृत्यु की सूचना देता है। यदि चैत्र सुदी पंचमी को प्रातः अपना चन्द्र स्वर न चले तो समझना चाहिए कि निश्चित ही कोई राजदण्ड भुगतना पड़ेगा। यदि चैत्र मास की छठे के दिन प्रातः काल अपना चन्द्र-स्वर न चले तो। यह इस बात का संकेत करता है कि अपने भाई की अथवा मित्र की मृत्यु होने वाली है। यदि चैत्र मास की सप्तमी के दिन प्रातः अपना चन्द्र स्वर न चले तो अपनी स्त्री की मृत्यु की सूचना देता है। यदि चैत्र मास की सुदी अष्टमी के दिन अपना चन्द्र स्वर न चले तो वह इस का स्पष्ट संकेत

करता है कि स्वयं को कष्ट एवं पीड़ा की भुगतान करनी पड़ेगी इसमें कोई संदेह नहीं है। यदि उक्त दिनों में अपने चन्द्र स्वर में पृथ्वी एवं जल-तत्त्व चले तो उत्तम और श्रेष्ठ फल प्राप्ति की सूचना देता है। पृथ्वी-तत्त्व एवं जल तत्त्व दोनों अमृत गति चन्द्र स्वर में बहे तो कहे गये हैं। राहु क्रूर ग्रह काल सूर्य एवं चन्द्र आदि कोई अनिष्ट नहीं कर सकते तथा स्थिर कार्य के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं ये तत्त्व समस्त कल्याण को देने वाले हैं किन्तु चर कार्य के लिए शुभ नहीं है। वायु अग्नि और आकाश ये तीनों तत्त्व सूर्य स्वर में चर कार्य के लिए उपयोगी माने गये हैं। लेकिन चन्द्र स्वर में ये तत्त्व अशुभ फल प्रदाता कहे जाते हैं।

रोगोत्पत्ति का मूल कारण

वात-पित्त-कफ को रोगों का मूल कारण माना गया। इन तीनों के सम रहने से मनुष्य का शरीर पूर्ण निरोग रहता है तथा इनकी विषमता से शरीर में नानाविध रोगों की उत्पत्ति की संभावना बनी रहती है। इस मानव शरीर में स्वर वेत्ताओं ने चौरासी प्रकार की वात पच्चीस प्रकार का पित्त और तीन प्रकार का कफ माना गया है। इन सब भेदों के मिलने से ११२ भेद हो जाते हैं। वायु-तत्त्व का निवास उदर में है उसका स्वामी सूर्य है। यह शरीर की धमनियों में भरपूर रूप से प्रवाहित होता रहता है। पित्त का निवास कन्धों में है यह जठराग्नि में संचरण करता है इसका स्वामी सूर्य है। नाभि से तीन अंगुल वाम दिशा में दो नाड़ियां कफ की हैं। जो हृदय पर्यन्त जाती हैं। कफ का स्वामी चन्द्रमा है वात-पित्त-कफ में तीनों अपनी-अपनी ऋतु में अपना-अपना प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। इनका आयुर्वेद ग्रन्थ में सविस्तार वर्णन दिया गया है यहाँ स्वरोदय में तो बहुत संक्षेप में लिखा है।

“गमन करने में स्वरोदय का विचार”

अगर कहीं ऊँचा पर्वत पर या ऊँची मंजिल पर चढ़ना हो तो चन्द्र-स्वर में प्रस्थान करना श्रेयस्कर है। अगर कहीं नीचे तल घर में या नीचे की मंजिल के लिए गमन करना हो तो सूर्य स्वर में प्रस्थान करने से सफलता प्राप्त होती है। क्योंकि ऊर्ध्व लोक का स्वामी चन्द्रमा है तथा अधोलोक का स्वामी सूर्य है। चन्द्र स्वर में पूरब और उत्तर दिशा में नहीं जाना चाहिए। अगर वह इन दिशाओं में जायेगा तो अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होगा। यदि सूर्य-स्वर चल रहा हो तो दक्षिण और पश्चिम दिशा में कदापि गमन नहीं करना चाहिए। अगर जायेगा तो उसकी मृत्यु अवश्य भावी है। सुषुम्ना स्वर में कभी परदेश गमन नहीं करना चाहिए यदि वह गमन करता है तो क्लेश एवं हानि को प्राप्त होता है। इस पृथिव शरीर में शिराओं के विविध जाल रूपी तार लगे हुए हैं। इन शिराओं में डूजा और पिंगला दो नाड़ी मुख्य मानी गई हैं। इनके अतिरिक्त

भीतर में एक पोली नली है वही सुषुम्ना कहलाती है। वह मेरुदण्ड के भीतरी भाग से होकर गई है। इस नली के नीचे के सिरे से चिपका हुआ मूलाधार चक्र है। जहाँ कुण्डलिनी शक्ति निवास करती है। इसी के ऊपरी सिरे से चिपका हुआ सहस्रार चक्र है। हमारी प्राण शक्ति दूजा और पिंगला इन दो नाड़ियों से होकर प्रवाहित होती है। यदि योग साधक किसी प्राणायाम की प्रक्रिया से अपनी प्राण शक्ति को सुषुम्ना में प्रवाहित कर लेता है। तो उसकी सोई हुई कुण्डलिनी जागृत हो जाती है। तब योगी को सहस्रार चक्र में अनल शिखा के सदृश ज्योति के दर्शन प्राप्त होता है। बहुत से विचित्र आध्यात्मिक अनुभव घटित होते हैं। उस स्थिति में उसके समस्त संकल्प और विकल्प विलीन हो जाते हैं। अतः कथन सर्व तो भावेन हितावह माना गया है कि ध्यान के बिना हम मन की चंचलता को कैसे पहचान सकते हैं? क्योंकि मन की चंचलता को जाने बिना उसका निरोध कैसे संभव हो सकता है। अजपाजप के द्वारा ही इसके निरोध का विधान है। मन के निरोध के अभाव में शान्ति और सौख्य को उपलब्ध करना अतिशय कठिन है। श्वास लेते समय “सो” शब्द का और श्वास को छोड़ते समय “हं” शब्द की ध्वनि का निष्कासन होता है। इससे स्वयमेव अजपाजप सम्पादित होता है। अर्हम् और ॐ की ध्वनि भी इसी प्रकार प्रकट होती है। तब मन की एकाग्रता का पूर्णतया संवर्धन होने लगता है।



१२. स्वरोदय और प्रश्नों की यथार्थता

प्रवासी व्यक्ति के सुख दुःख की स्थिति की अवगति हेतु एतद्विषयक प्रश्नों का स्वर शास्त्रज्ञ से पूछकर व्यक्ति अपनी मानसिक जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त करना चाहता है। इसमें भी तत्त्वों की प्रधानता मानी गई है तथा यह निरीक्षण करना भी आवश्यक है कि कौन-सा “स्वर” चल रहा है। अगर प्रश्न के समय चन्द्र-स्वर बह रहा हो तब यह कहना समुचित रहेगा कि प्रवासी कुशल-क्षेम है। प्रश्न के समय जल-तत्त्व बह रहा हो और प्रवासी किसी यात्रा पर गया हो तब उसे जल के कष्ट का सामना करना पड़ेगा। अगर किसी स्थान पर अवस्थित व स्थिर है तो जहां भी है वहां परम सुखी और निश्चित है। प्रश्न के समय अगर अग्नि-तत्त्व चल रहा हो तो प्रवासी को ज्वर-कष्ट से अथवा अन्य किसी रोग से पीड़ित समझना चाहिए। प्रश्न के समय यदि वायु-तत्त्व बह रहा हो तो प्रवासी उस स्थान से प्रस्थान कर कहीं अन्यत्र चला गया है। यदि प्रश्न के समय आकाश तत्त्व बह रहा हो तो प्रवासी व्यक्ति रुग्ण है अथवा मृत्यु को प्राप्त हो गया है। उपर्युक्त प्रश्नों का सम्बन्ध चन्द्र-नाडी के तत्त्वों के साथ जुड़ा हुआ है।

अगर प्रश्न के समय सूर्य-स्वर में वायु-तत्त्व बह रहा हो तो प्रवासी व्यक्ति किसी दूसरे स्थान पर जाना चाहता है। अग्नि-तत्त्व हो तो व्यक्ति रोग से संग्रस्त है। पृथ्वी-तत्त्व हो तो प्रवासी परदेश में स्थिर है। यदि जल-तत्त्व हो तो प्रवासी सुखी है। यदि आकाश-तत्त्व हो तो प्रवासी की मृत्यु की सूचना समझनी चाहिए।

जब व्यक्ति को तत्त्वों की सम्यक् पहचान हो जाती है तब पृष्टव्य समय प्रश्नों का प्रत्युत्तर शत प्रतिशत यथार्थ हो सकते हैं। तत्त्वों के साथ चलने वाले अन्तर प्रत्यन्तर स्वर प्रवाह को जानना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में प्रश्नों का उत्तर सम्यक् नहीं हो सकता। इसकी साधना निश्चित समय, तिथि, वार, राशि, वक्षत्र और लग्न पर आधारित है।

यात्रा के शुभारशुभ प्रश्न

किसी कार्य की सफलता के लिए अथवा किसी लक्ष्य की सिद्धि हेतु व्यक्ति गांव अथवा शहर की यात्रा करता ही रहता है। इसके लिए यह एक अनिवार्य नियम है कि प्रस्थान से पूर्व सुस्थिर होकर अपने श्वास का परीक्षण करे। उस समय जिस नासा छिद्र से श्वास का प्रवाह हो रहा हो तब उसी ओर का पांव आगे बढ़ाकर यात्रा करनी चाहिए। इस प्रकार के प्रयोग से यात्रा सफलता एवं सिद्धि प्राप्त होती है।

जब वाम-स्वर प्रवाहित हो रहा हो तब पूर्व और उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिए, तथा सूर्य-स्वर के प्रवाह में दक्षिण एवं पश्चिम दिशा में गमन नहीं करना चाहिए। वर्जनीय दिशा में गमन करने से महाभय और विघ्न होने की सम्भावना बनी रहती है। स्वरोदय शास्त्र में ऐसा संकथन है कि यायावर कुशलक्षेमपूर्वक वापस लौट कर घर नहीं आ सकता।

किसी मैत्री एवं सम्पत्त कार्य के लिए अथवा किसी विशेष व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वाम-स्वर में गमन करने से कार्य की सफलता की संसूचना है। स्वर विशेषज्ञ व्यक्तियों का ध्यान तिथियों तथा वारों से अधिक है। इसलिए शुक्रवार और शनिवार को घर से बाहर जाते समय भूमि पर सात पांव तथा अन्य किसी वार को ग्यारह पांव पृथ्वी पर फटकार कर यात्रा करने से अभीप्सित सिद्धि प्राप्त होती है। बृहस्पतिवार को यात्रा करते समय आधे पांव से भूमि का स्पर्श कर जाने से मनोवांछित फल की प्राप्ति का संकेत है।

आवश्यक यात्रा प्रसंग

अगर कहीं शीघ्र गमन करने का प्रसंग उपस्थित हो अथवा किसी दुःख, हानि एवं कलह निवारणार्थ जाना पड़े तब जिस नासा छिद्र से श्वास प्रवाह चल रहा हो उसी ओर का हाथ मुख पर फिराकर एवं उसी ओर का पांव आगे बढ़ाकर जाना उचित है। अगर चन्द्र-स्वर चल रहा हो तो चार पांव। यदि सूर्य-स्वर बह रहा हो तो पांच पांव भूमि पर फटकार कर गमन करने से व्यक्ति अपने लक्षित कार्य को सिद्धकर सानन्द घर वापिस लौट सकता है तथा सब प्रकार की विपत्तियों से बच सकता है। कुछ अनुभवी व्यक्तियों का संकथन है कि दूर देशाटन के लिए चन्द्र-स्वर कल्याणकारक माना गया है। समीपस्थ स्थान की यात्रा के लिए सूर्य-स्वर मंगलमय होता है। कार्य की शीघ्रता हेतु दक्षिण-नाड़ी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। तत्त्वोदय भी स्वर के अनुरूप होना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में निम्नोक्त श्लोक समुद्धृत है :

प्राकम्य प्राण पवनं, समारोहेत वाहनम् ।
समुत्तरेत पदं दत्त्वा, सर्वकार्याणि साधयेत् ॥

यात्रा करते समय प्राणों के पूरक का संविधान है तथा जिस ओर का श्वास बह रहा हो उस ओर के पांव को आगे बढ़ाकर चलना हितकर है । अगर चन्द्र-स्वर बह रहा हो तो चार पांव और यदि सूर्यस्वर बह रहा हो तो पांच पांव भूमि पर रखकर जाने से कार्य शीघ्र सफल होता है । किंतु अग्नि, वायु और आकाश-तत्त्व के उदय काल में यात्रा वर्जनीय मानी गई है । स्वरवेत्ता को किसी भी कार्य के सम्पादन में किसी ज्योतिषी को मुहूर्त दिखाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, क्योंकि तिथि, बार, नक्षत्र और लग्न आदि सब उसकी प्राणधारा पर ही निर्धारित हैं । इसका सम्यक् विश्लेषण पूर्व प्रकरण में स्पष्ट रूप से कर दिया गया है । यात्रा को सुखद बनाने हेतु स्वरोदय ज्ञान परम उपयोगी सिद्ध हुआ है । किंतु इसकी सूक्ष्मता को पहचानना अतिशय कठिन है । जिस व्यक्ति में उत्साह होता है वही इसकी अतल गहराई तक पहुंच सकता है । जीवन की व्यावहारिक भूमिका को विशुद्ध बनाने एवं दुर्घटनाओं से बचने के लिए इसका प्रतिदिन प्रयोग करना अपेक्षित है । इस प्रयोग से साधक को शत-प्रतिशत सफलता प्राप्त होने की सम्भावना है ।



१३. स्वरोदय और रोग निदान

विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में रोग का निदान भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। जैसे—आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में रोग का परीक्षण मल, मूत्र, नाड़ी, नेत्र व जिह्वा आदि को देखकर किया जाता है। किन्तु स्वरोदय चिकित्सा शास्त्र में रोग का निदान श्वास की धारा तथा गति के आधार पर किया जाता है। इस प्रसंग में यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि रोगोत्पत्ति के समय रुग्ण व्यक्ति का कौन-सा “स्वर” चल रहा था। अगर इसकी सम्यक् अवगति हो जाय तो रोग का निदान करना आसान हो सकता है। अब यह परीक्षण करना अपेक्षित है कि रोग की अभिवृद्धि किस स्वर में हुई। इसका पता लगते ही रोग की चिकित्सा सुगम हो जाती है। रोग के परीक्षण की यह एक सर्वश्रेष्ठ प्रक्रिया है।

स्वर परिवर्तन और रोगोपचार

यह किसी वैद्य या डाक्टर द्वारा की जाने वाली चिकित्सा पद्धति नहीं है तथा किसी औषध प्रयोग से की जाने वाली भी चिकित्सा नहीं है। यह चिकित्सा अतिशय सुगम तथा बिना व्यय के होने वाली एक विलक्षण पद्धति है। इसमें सर्वाधिक योगदान स्वयं की प्राणधारा का विशेष रूप से रहता है। अब रुग्ण व्यक्ति को इस बात पर अधिक ध्यान देना समुचित रहेगा कि रोग किस स्वर के प्रवाह काल में समुद्भूत हुआ है। जिस स्वर के चलने से रोग की अभिवृद्धि होती हो उस ओर के स्वर को बदलने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वर बदलने की विधि का अग्रिम प्रकरण में सम्यक् विवेचन किया जायेगा। यदि मार्ग में चलते समय स्वर परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हो तो जिस नासिका से श्वास चल रहा हो उस ओर के नासा पुट को अंगूठे से दबाकर बन्द कर देना चाहिए। इस प्रयोग से प्रवहमान श्वास तत्काल अवरुद्ध हो जाता है। इस प्रकार का स्वर परिवर्तन रोग की तीव्रता को घटाने में सहायक सिद्ध हुआ है। यह रोग के प्रारम्भिक काल में चामत्कारिक प्रभाव प्रकट करता है किन्तु यह स्वाभाविक भी है कि रोग वृद्धि के पश्चात् किये जाने वाले प्रयोग का फल विलम्ब से ही प्राप्त होता है।

स्वर और स्वास्थ्य

जिस व्यक्ति का दिन में चन्द्र-स्वर तथा रात्रि में सूर्य-स्वर विशुद्ध रूप से प्रवाहित हो तो निःसंदेह समझना चाहिए कि ये लक्षण उसकी दीर्घायु की

संसूचना देते हैं। कदाच स्वर उपरोक्त विधि के विपरीत चले तो शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तन कर लेना चाहिए। इस प्रयोग से व्यक्ति स्वस्थ एवं निरोग रह सकता है। भोजन के समय सूर्य-स्वर को होना नितांत अपेक्षित माना गया है क्योंकि इससे पाचन संस्थान पूर्ण रूप से सक्रिय हो जाता है। अन्नादि के परिपाक में भी इसका असाधारण योगदान है। भोजन के पश्चात् अगर एक घण्टा लगातार सूर्य-स्वर चलता रहे तो उदर के समस्त विकार नष्ट हो जाते हैं। उससे शरीर में बल एवं ऊर्जा की सतत अभिवृद्धि होती रहती है। कठिन कार्य जैसे—आसन, प्राणायाम आदि प्रक्रिया के समय “सूर्य-स्वर” का चलना कोई कम लाभदायक नहीं है। अगर किसी को अपने शरीर में उष्णता की अधिक प्रतीति होने लगे तब “चन्द्र-स्वर” और अगर सर्दी महसूस हो तब सूर्य-स्वर का चलना श्रेयस्कर माना गया है।

स्वर द्वारा आमय-चिकित्सा

ज्वरोत्पत्ति—जिस समय ज्वर (बुखार) आने की संभावना प्रतीत हो उस समय जो स्वर चल रहा हो उस ओर के स्वर को तत्काल अवरुद्ध कर देना चाहिए तथा जब तक शरीर पूर्ण स्वस्थता की अनुभूति न करने लगे तब तक उसे पूर्ण रूप से बन्द रखना चाहिए। ज्वर से मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह प्रक्रिया सर्वोच्च रूप से व्याख्यायित की गई है। यह औषधोपचार से भी अधिक प्रभावकारी सिद्ध हुई है। अब अपने अभीष्ट स्वर को बन्द करने का सबसे सरल उपाय यह है कि जिस नासा-पुट को बन्द करना चाहते हैं उस नासा-पुट में स्वच्छ रुई रखें। इस विधि से ज्वर शीघ्र बन्द हो जाएगा। रोग को कम करने की यह सर्वश्रेष्ठ विधि प्रतिपादित हुई है; किन्तु आधुनिक युग में जन-मानस का सर्वाधिक विश्वास औषध प्रयोग पर है। उन्हें अपने चिन्तन के धरातल को बदलने की अपेक्षा है।

अपच (अजीर्ण)

जिन व्यक्तियों के अपच अर्थात् अजीर्ण का रोग हो उन्हें इस बात का विशेष ध्यान रखना अपेक्षित है कि भोजन सूर्य-स्वर की उपस्थिति में करने के विधान की अनुपालना करें जिससे खाया हुआ भोजन शीघ्र पच जाता है। पहले का अजीर्ण भी इस प्रयोग से सर्वथा मिट जाता है तथा पाचन शक्ति में भी अभिवृद्धि होने लगती है। भोजनोपरांत पन्द्रह मिनट अथवा बीस मिनट बायीं करवट शयन का संविधान है। इसके अतिरिक्त वज्रासन में स्थित होकर १५ अथवा २० मिनट नाभि दर्शन करने से एक सप्ताह की अवधि में ही अजीर्ण रोग उपशांत हो जाता है। इस विधि से निःसंदेह साफल्य प्राप्ति की संभावना है।

प्रतिशय (जुकाम) कास (खांसी)

जिन व्यक्तियों को जुकाम, खांसी तथा शीत की व्याधि अधिक उत्पीड़ित करती है उन्हें उस समय वाम-स्वर को बिल्कुल अवरुद्ध कर देना चाहिए। जब तक रोग शांत न हो तब तक दक्षिण-स्वर की उपस्थिति श्रेयस्कर मानी गई है। सूर्य प्राणायाम से भी लाभ की प्राप्ति का संकेत है।

आकस्मिक दर्द की समुत्पत्ति

हृदय, पीठ, कमर, उदर और छाती आदि किसी अवयव में अकस्मात् दर्द एवं पीड़ा समुत्पन्न हो जाए तब उस समय जो स्वर चल रहा हो उसे तत्काल बन्द कर देना चाहिए। इस प्रक्रिया से चाहे जैसा दर्द भी क्यों न हो तत्काल शांत हो जाता है। वैद्य और डाक्टर को योग कहां-कहां उपलब्ध होता है। स्वरयोग की चिकित्सा अतीव सरल और सुगम है। जैसे रोगी औषध प्रयोग पर सर्वाधिक विश्वास रखता है और उसका सेवन पथ्यानुकूल जागृति युक्त करता है इसी प्रकार इस उपचार को भी साधारण समझकर कदापि अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

श्वास (दमा)

श्वास एक ऐसी बीमारी है जो व्यक्ति को अहर्निश व्यथित एवं दुःखित करती रहती है। जब श्वास का वेग बढ़ने लगे तब जिस नासिका से श्वास बह रहा हो उसे तुरन्त बन्द कर देना चाहिए। इस प्रयोग से पन्द्रह मिनट में ही आराम की अनुभूति होने लगती है। इस व्याधि को जड़ से नष्ट करने के लिए निरंतर एक माह पर्यन्त चालू स्वर को बन्द करने का अभ्यास करना अपेक्षित है। स्वर परिवर्तन का जितना अधिक अभ्यास किया जाएगा उतना ही शीघ्र लाभ प्राप्त हो सकेगा।

आधाशीशी (आधाशीशी)

आधाशीशी के दर्द में जिस ओर के सिर में पीड़ा उत्पन्न हो उसी ओर के हाथ की कोहनी को रस्सी द्वारा कसकर बांध दें। इस प्रयोग से दर्द में अच्छा लाभ मिल सकता है। अगर दूसरे दिन फिर पीड़ा समुत्पन्न हो जाए तब जो स्वर चल रहा हो उसे तत्काल अवरुद्ध कर देना चाहिए। इस प्रकार के उपक्रम से निःसंदेह लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

रक्त-विकार

अगर किसी कारणवश शरीर का रक्त दूषित हो जाए अथवा फोड़े-फुन्सी और खुजली समुत्पन्न होने की संभावना प्रतीत हो तब “शीतली-कुम्भक” के प्रयोग से रक्त पूर्णतया विशुद्ध बन जाता है। इससे समग्र चर्म-रोग, कुष्ठ, दद्रु पामा और चकत्ते आदि नष्ट हो जाते हैं। रक्त विशुद्धि में यह अपना एक अचूक प्रभाव प्रकट करता है। औषध प्रयोग से जो शरीर में अनावश्यक विष एकत्रित हो जाता है उसे निष्कासित करने के लिए प्राणायाम एक सशक्त माध्यम है। गोरक्ष पद्धति से इसका सम्यक् विवेचन किया गया है।

रुग्ण व्यक्ति की स्वस्थता और अस्वस्थता की पहचान—जब व्यक्ति रोगी हो जाता है तब उसके मानस में जीवन और मरण का प्रश्न बार-बार उभरता रहता है। रोगी उसका समाधान प्राप्त करने की अपने मन में तीव्र उत्कण्ठा संजोए रखता है। साधारण व्यक्ति इन जिज्ञासाओं को समाहित नहीं कर सकता। इसका सही प्रत्युत्तर वही दे सकता है जो स्वरवेत्ता होता है। स्वर-साधना एक उच्चकोटि की साधना है। जो सिद्ध योगी होते हैं उनकी कही हुई वार्ता शत-प्रतिशत यथार्थ होती है। रोगी की स्वस्थता और अस्वस्थता का ज्ञान निम्नोक्त संकेतों में समझा जा सकता है।

१. प्रश्नकर्ता व्यक्ति स्वर योगी के दाहिनी तरफ बैठ कर अथवा खड़े होकर भय, शंका एवं निराशा जनित उद्गार अभिव्यक्त करे। उस समय यदि श्वास पूर्ण रूप से बह रहा हो तो समझ लेना चाहिए कि रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाएगा।

२. यदि प्रश्नकर्ता स्वर-साधक के शून्य स्वर की ओर खड़ा होकर अथवा बैठ कर प्रश्न करे तब यह समझना अपेक्षित होगा कि रोगी का बचना असंभव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है।

३. यदि प्रश्नकर्ता उत्तरदाता के चन्द्र-स्वर की ओर बैठकर रोगी के बारे में प्रश्न करे। उस समय उत्तरदाता का यदि सूर्य-स्वर चल रहा हो तो निःसंदेह कह देना चाहिए कि रोगी किसी भी स्थिति में नहीं बच सकता।

४. अगर जिज्ञासु व्यक्ति बाएं स्वर की तरफ बैठकर प्रश्न करे। उस समय उत्तरदाता का वाम-स्वर पृथ्वी-तत्त्व युक्त चल रहा हो तब निश्चित समझना चाहिए कि रोगी एक मास की अवधि में पूर्ण स्वस्थ हो जाएगा।

५. यदि प्रश्नकर्ता दक्षिण दिशा की तरफ बैठकर प्रश्न करे। उस समय अगर प्रत्युत्तर देने वाले का वाम-स्वर चल रहा हो तो समझना चाहिए कि लाख प्रयत्न करने के बावजूद भी रोगी का बचना असंभव है।

६. अगर प्रश्नकर्ता पहले शून्य-स्वर की तरफ आकर बैठ गया हो, तत्पश्चात् अपने आप उठकर पूर्ण-स्वर की तरफ आकर प्रश्न करे। तब उन्मुक्त भाव से कह देना चाहिए कि रोगी मरणासन्न होने पर भी मृत्यु को संप्राप्त नहीं होगा।

७. जब प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता का स्वर एक सदृश रूप से बह रहा हो तब निर्भयतापूर्वक कह देना चाहिए कि रोगी अवश्य बच जाएगा।

८. यदि प्रश्न के समय उत्तरदाता का सुषुम्ना-स्वर चल रहा हो तथा प्रश्नकर्ता तीन चार और पांच विषम अक्षरों का उच्चारण करे। तब फल स्वस्थता के प्रतिकूल समझना चाहिए।

९. प्रश्न करते समय उत्तरदाता का सुषुम्ना-स्वर वायु-तत्त्व युक्त बह रहा हो, और उस दिन बार गुरुवार हो तब निःसंदेह कह देना कि रोगी की मृत्यु नहीं होगी। अगर शनिवार-बार हो तथा उसमें आकाश-तत्त्व की सुषुम्ना बह रही हो तो रोगी उसी रोग से मृत्यु को प्राप्त होगा। उसके शरीर में कोई नया रोग समुत्पन्न होने की संभावना नहीं है।



१४. स्वरोदय और काल परिज्ञान

१. जिस रोगी का निरन्तर चन्द्र-स्वर चलता रहे तथा उसमें कोई परिवर्तन घटित न हो तब उस व्यक्ति की आयु तीन वर्ष अवशेष समझनी चाहिए।

२. जिस रोगी का तीन दिन पर्यन्त सतत सूर्य-स्वर चलता रहे। उसमें कोई परिवर्तन घटित न हो तब उस व्यक्ति की आयु दो वर्ष के भीतर समझनी चाहिए।

३. दाहिने अथवा बाएं में से कोई एक स्वर बहुत दिन पर्यन्त सतत चलता रहे तो वह इस बात की सूचना देता है कि रोगी की आयु एक वर्ष ही अवशेष है।

४. अगर रोगी व्यक्ति का दिन में सूर्य और रात्रि में चन्द्र-स्वर चलता रहे तब यह-अशुभ स्थिति की संसूचना करता है। इस प्रकार की स्थिति में रोगी व्यक्ति की आयु के छह महीने अवशेष समझने चाहिए।

५. अगर निरन्तर दो सप्ताह से अधिक दिन-रात सूर्य-स्वर चले तब यह आयु के एक मास शेष रहने की सूचना देता है। निरन्तर चलने वाला स्वर यदि प्रयास के बावजूद भी न बदले तो रोगी की आयु दो सप्ताह शेष समझनी चाहिए।

काल-ज्ञान के साधारण लक्षण

जिस रोगी के शरीर में रात्रि में दाह और दिन में सर्दी लगने की अनुभूति हो तथा गले में कफ संभृत रहे तब समझ लेना चाहिए कि मृत्यु के दिन निकट है। तथा उस रोगी की मृत्यु भी सन्निकट समझनी चाहिए कि जिसके नेत्र, मुख और देह वर्ण परिवर्तित हो गया हो एवं रोगी कांति, बल और लज्जाविहीन बन गया हो। ऐसी स्थिति में भी वह छः महीने से अधिक जीवित नहीं रह सकता। यदि शरीर से स्वेद निकलना बन्द हो जाए तो तीन महीने से अधिक नहीं बच सकता। जिस व्यक्ति को सूर्य और चंद्रमा धूम्रवर्ण प्रतीत हो उसके दस दिनों की अवधि में काल-कवलित होने की सूचना है। सूर्य के बिम्ब में दक्षिण दिशा की ओर ज्वाला दृष्टिगोचर हो तो तत्काल मृत्यु का संकेत है। जिस व्यक्ति के मल, मूत्र और अधोवायु ये तीनों एक साथ निष्कासित हों ऐसी स्थिति में वह दस दिनों से अधिक जीवित नहीं रह सकता। यदि रोगी व्यक्ति को अपनी भ्रुकुटी दृष्टिगत न हो तो नव दिन, कर्ण-ध्वनि न सुने तो सात दिन, नेत्र तारक दिखाई न दे तो पांच दिन, नासिका का अग्रभाग दिखाई न दे तो तीन दिन और जीभ का अग्रभाग दृष्टिगत न हो तो एक दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकता। यह संकथन अनुभव सिद्ध योगियों का है। इन नियमों को जानने वाला व्यक्ति अपनी मृत्यु का परिज्ञान कर लेता है।

१५. प्राण-वायु की गति का प्रमाण

कायानगरमध्यस्थो, मारुतो रक्षपालकः ।
प्रवेशे दशभिः प्रोक्तो, निर्गमे द्वादशांगुलः ॥

वृ. शि. स्वो. श्लो. २२९

काया को एक नगर की उपमा से उपमित किया गया है । इसका रक्षपाल प्राण-वायु है । श्वास प्रवेश काल में दस अंगुल और निर्गम काल में बारह अंगुल प्रमाण माना गया है । इसलिए प्रत्येक प्राणी की वायु का अनुमान श्वास-प्रश्वास की गति पर ही निर्धारित किया गया है । गमन समय में प्राण-वायु का प्रमाण २४ अंगुल, दौड़ने के समय में प्राण-वायु का प्रमाण ४२ अंगुल, मिथुन-काल में प्राण-वायु का प्रमाण ७५ अंगुल और शयन काल में शतांगुल हो जाता है । प्राण-वायु शरीर में सतत क्रियाशील रहती है । उसकी स्वाभाविक गति बारह एवं सोलह अंगुल मानी गई है किन्तु भोजन एवं वमन के समय अठारह अंगुल हो जाती है । छह अंगुल अभिवृद्धि होने का विवेचन शास्त्र सम्मत है । जिन योगियों की प्राण-वायु पर विजय हो जाती है वे सिद्ध योगी अपने प्राणों की गति को कम करने में सफल हो जाते हैं । जिसके फलस्वरूप वे अपूर्व एवं विलक्षण सिद्धियां हस्तगत करने में सक्षम हो जाते हैं ।

ह ।

प्राण वायु को कम करने से निम्नांकित सिद्धियां अपलब्ध होती हैं ऐसा स्वरोदय में संकथन है ।

एक-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
दो-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
तीन-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
चार-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
पांच-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
छह-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
सात-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
आठ-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
नव-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
दस-अंगुल प्राण-वायु कम करने से
ग्यारह-अंगुल प्राण-वायु कम करने से

बारह-अंगुल प्राण-वायु कम करने से

निष्कामता
अपूर्व आनन्द
कवित्व-शक्ति
वाचा सिद्धि
दूर दृष्टि की प्राप्ति
आकाश-गमन
प्रचण्ड वेग की प्राप्ति
अष्ट-सिद्धि
नव-निधि
सिद्ध-दर्शन
शरीर की छाया
का लोप
हंस गति की उपलब्धि

संसार में इस प्रकार के साधक का जीवन एक विशिष्ट उदाहरण स्वरूप माना गया है। उसमें अमृत-पान करने की अद्भुत शक्ति का अविर्भाव हो जाता है। अगर साधक नख से शिखा पर्यन्त प्राण-वायु को धारण करने में समर्थ हो जाता है तब उसके भोजन की सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। वह साधक देव सदृश कांति, द्युति, निरोग एवं दीर्घजीवी हो जाता है। यह योगियों की अनुभूत वाणी है।

वृहद् शिव स्वरोदय में कहा है—

एवं प्राणविधि प्रोक्तः सर्व कार्यफलप्रदः ।
जायते गुरुवाक्येन, न विद्या शास्त्रकोटिभिः ॥

बृ. शि. स्वो. श्लो. २२८

कौन प्राणी कितनी श्वास लेता है—

| प्राणी | श्वास-प्रति मिनट | आयु-वर्ष |
|-----------|------------------|----------|
| १. कछुआ | ४-५ | १५०-१५५ |
| २. सर्प | ७-८ | १२०-१२२ |
| ३. हाथी | ११-१२ | १००-१२० |
| ४. मनुष्य | १६-१८ | १००-१५० |
| ५. घोड़ी | २०-२२ | ४८-५० |
| ६. बकरा | २३-२४ | १२-१३ |
| ७. कुत्ता | २८-३० | १३-१४ |
| ८. बन्दर | ३१-३२ | २०-२१ |

उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि श्वास-प्रश्वास की गति पर ही हमारा स्वास्थ्य और जीवन अवलम्बित है।

१६. स्वर-विज्ञान और दीर्घ-जीवन

आयु-वृद्धि के उपायों का मैंने स्वरोदय शास्त्र के आधार पर ही विवेचन किया है। अगर व्यक्ति इस प्रक्रिया को आत्मसात् कर लेता है तो वह आयुवर्धन के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त कर सकता है। किन्तु उन्हें प्रतिदिन स्वरोदय के साथ पंच तत्त्व का अनुचिन्तन करना अत्यन्त अपेक्षित है। वायु-तत्त्व को बांध कर दक्षिण-स्वर पर विजय प्राप्त करने वाला दीर्घायु हो जाता है। चन्द्रमा की अमृत किरणों साधक के शरीर रूपी कमल को सतत अभिसिक्त करती रहती हैं। आकाश-तत्त्व को वाम-नाड़ी में विजित करने पर व्यक्ति दीर्घायु बन जाता है। स्वरोदय शास्त्र में इड़ा-नाड़ी को गंगा, पिंगला को यमुना और सुषुम्ना को सरस्वती कहा है। इन तीनों नाड़ियों के संगम को प्रयोग की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसको स्वरोदय में सर्वोत्कृष्ट तीर्थ माना गया है। जो व्यक्ति इस प्रक्रिया को सम्यक् प्रकार से जान लेता है वह अपने घर बैठे तीर्थ यात्रा कर लेता है। जो साधक चन्द्र-स्वर को सूर्य-स्वर में और सूर्य-स्वर को चन्द्र-स्वर में अन्योन्यभाव से पान करता रहता है वह व्यक्ति चंद्रमा और तारों की स्थिति पर्यन्त जीवित रह सकता है। स्वरोदय में कहा गया है—

दिन को तो चन्दा चले, चले रात को सूर।
यह निश्चित कर मानिए, प्राण गमन अति दूर ॥

चिर-यौवन प्राप्ति के उपाय

युवकत्व को दीर्घकाल पर्यन्त सुरक्षित रखने हेतु स्वर यानी प्राण-प्रवाह को बदलने का सतत अभ्यास करने की अपेक्षा है। दिन में जब भी अवकाश मिले तब जो स्वर चल रहा हो उसे तत्काल बदलने का प्रयत्न करना चाहिए। इस क्रिया का दिन में कई बार अभ्यास करने से चिर-यौवन प्राप्त किया जा सकता है। इसके साथ अगर “विपरीत-करणी-मुद्रा” का प्रयोग किया जाय तो सर्वाधिक लाभ की संभावना है। एक विलक्षण साधना और निर्दिष्ट की गई है। “अनाहत-कमल” के भीतर एक अरुण वर्ण “सूर्य-मण्डल” अवस्थित है। सहस्रार-चक्र से जो सतत अमाकला से अमृत झरता रहता है वह सूर्य-चक्र में

आते ही ग्रसित हो जाता है। इसलिए मनुष्य का शरीर बलि पलित एवं जरावस्था से आक्रांत हो जाता है। यह क्रिया अत्यन्त गोपनीय और कठिन है। इसलिए इसका अभ्यास गुरु की सन्निधि में रहकर करना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा हानि होने की सम्भावना है।

योगाचार्यों का संकथन है—

गुरुपदेशतो ज्ञेयं, न च शास्त्रकोटिभिः ।

प्रेक्षाध्यान वर्तमान समस्या का एक सटीक समाधान है। क्योंकि प्रवृत्ति से शक्ति का क्षय होता है तथा निवृत्ति से शक्ति का संचय होता है। शक्ति संगृहीत करने की यह सर्वोत्तम प्रक्रिया है। मानसिक शांति का भी एक अमोघ उपाय है। इसके साथ अगर स्वरोदय-विज्ञान और जुड़ जाए तो वह साधक आत्म-दर्शन के सर्वोच्च शिखर पर आरोहण कर सकता है।



१७. स्वरोदय और कार्य

किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त करने हेतु स्वर का निर्वाचन करना अत्यन्त आवश्यक है। कौन से कार्य के लिए कौन-सा स्वर शुभ तथा कौन-सा स्वर अशुभ होता है। इसके बला-बल का परीक्षण करना कार्य की सिद्धि का संसूचक माना गया है।

चन्द्र-स्वर के कार्य

१. आश्रम में प्रवेश करना।
 २. दूर गमन दक्षिण और पश्चिम दिशा की यात्रा करना।
 ३. किसी वस्तु का संग्रह करना।
 ४. स्तम्भ का प्रतिष्ठान कराना।
 ५. दान और दक्षिणा देना।
 ६. किसी के साथ विवाद करना।
 ७. शांति एवं पौष्टिक कर्म करना।
 ८. नवीन वस्त्र धारण करना।
 ९. शपथ ग्रहण करना।
 १०. दिव्यौषध सेवन करना।
 ११. स्वामी दर्शन करना।
 १२. गृह प्रवेश करना।
 १३. मैत्री स्थापित करना।
 १४. कोई भी शुभ कार्य प्रारम्भ करना।
 १५. दीक्षा देना।
 १६. विद्यारंभ करना।
 १७. कोष की संस्थापना करना।
 १८. मूत्र परित्याग करना।
 १९. पानी आदि तरल पदार्थ का सेवन करना।
 २०. पुर, नगर आदि में प्रवेश करना।
 २१. विष दूर करना।
 २२. छत्र धारण करना तथा तिलक लगाना।
 २३. संधि स्थापित करना।
 २४. मित्र से मिलना।
 २५. किसी पदाधिकारी से बातचीत करना व मिलना।
- उपर्युक्त सभी कार्यों में चन्द्र-स्वर व जल-तत्त्व एवं पृथ्वी-तत्त्व का संयोग

हो तो कार्य की सिद्धि समझनी चाहिए। वायु, अग्नि और आकाश-तत्त्व की उपस्थिति हो तो कार्य की असिद्धि का संसूचक है। शुक्ल-पक्ष हो तिथि बार नक्षत्र एवं तत्त्वों की अनुकूलता हो तो इन सभी कार्यों की सफलता असंदिग्ध है। इनमें किंचित् मात्र भी आशंका करने की अपेक्षा नहीं है। अगर इनसे भिन्न बार तथा भिन्न तिथि आदि हो तो कार्य का प्रारम्भ नहीं करना चाहिए।

सूर्य स्वर के कार्य

जिस समय सूर्य-स्वर वह रहा हो तथा तत्त्वोदय की अनुकूलता हो उस समय कठिन कार्य करने का संविधान है।

१. कठिन विद्याभ्यास करना।
२. संगीत का अभ्यास करना।
३. कठोर योगाभ्यास करना।
४. पत्र-लेखन करना।
५. गति में प्रवृत्त होना।
६. लिपि लेखन का कार्य करना।
७. व्यायाम करना।
८. भोजन करना।
९. दान देना।
१०. सरिता को पार करना।
११. किसी रोगी को औषध देना।
१२. शयन कक्ष में प्रवेश करना।
१३. औषध निर्माण करना।

उपर्युक्त सभी कार्यों के प्रारम्भ में सूर्य-स्वर हो, मंगल, शनि और रविवार हो, कृष्ण-पक्ष तथा वायु आदि तत्त्वों का योग हो तो निःसंदेह चर कार्य की सफलता समझनी चाहिए। यदि इससे भिन्न बार और तिथि एवं तत्त्वोदय की उपस्थिति हो तो कार्य की असफलता का संसूचन है।

शम्भु स्वर के कार्य

जिस समय सुषुम्ना-स्वर चल रहा हो। अर्थात्—दोनों नासा छिद्रों से श्वास प्रवाहित हो रहा हो उस समय किसी भी प्रकार के कार्य नहीं करने चाहिए। ऐसे समय में किए जाने वाले सभी सांसारिक कार्यों का फल विपरीत होता है क्योंकि सुषुम्ना-नाड़ी समस्त कार्यों को नष्ट करने वाली है। इस नाड़ी में अवस्थित अग्नि काल रूप होकर जलती है। क्षण में दाईं और क्षण में बाईं तरफ बहने वाली वायु विषम वायु होती है। यह यात्रा क्लेश और मृत्यु की संसूचना देती है। शम्भु-स्वर के प्रवाह काल में कार्यों का ही संकथन है। सूर्य नाड़ी और सुषुम्ना में “शाप” का संविधान है। वरदान कभी फलित नहीं होता। उसके लिए तो चाहिए सितपक्ष, चन्द्र-स्वर तथा तत्त्वों की अनुकूलता। किसी के आग्रह पूर्वक का भी कोई फल प्राप्त नहीं होता किन्तु हृदय से निःसृत शब्द ही फलप्रद होते हैं।

१८. श्वासोच्छ्वास बदलने की विधि

बार, तिथि और नक्षत्र आदि के विपरीत चलने वाला स्वर सदा अहितकर होता है। अगर उसे बदल लिया जाए तो बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। कभी-कभी किसी प्रयोजनवश स्वर परिवर्तन की आवश्यकता अपेक्षित होती है। इसलिए परिवर्तन की कुछेक प्रक्रियाओं का यहां दिग्दर्शन करवाया गया है।

प्रथम विधि

जिस नासा छिद्र से प्राणधारा बह रही हो उसके विपरीत नासा छिद्र को अंगूठे से अवरुद्ध कर देना चाहिए। फिर जिस नासा-छिद्र से श्वास चल रहा हो उससे पूरक करें। तत्पश्चात् अवरुद्ध श्वास वाले नासा छिद्र से रेचन करें। इस प्रकार से अविलंब श्वास की गति बदल जाएगी तथा अभीष्ट स्वर स्वतः प्रवाहित होने लग जाएगा। यह अनुभव सिद्ध बात है।

उपर्युक्त प्रक्रिया से अतिरिक्त स्वर परिवर्तन करने का एक अन्य उपक्रम सर्वाधिक सरल है। इस परिवर्तन की विद्या का बार-बार अभ्यास करना अपेक्षित है।

दूसरी विधि

जिस नासा पुट से श्वास बह रहा हो उसके विपरीत शयन करने पर तत्काल श्वास की गति में बदलाव घटित होने लगता है। यदि दाएं नासा-छिद्र से श्वास चलना अभीष्ट हो तो बाएं करवट लेट जाएं। यदि बायां-स्वर चलना अभीष्ट हो तो दाईं करवट लेट जाएं। अगर "शिव-स्वर" चलना अभीष्ट हो तो खड़े होकर अथवा लेटकर शरीर को शिथिल करने की स्वतः सूचना दें। दोनों हाथों को अगल-बगल में फैला दें तथा दृष्टि को "आज्ञा-चक्र" पर केन्द्रित करें। प्रेक्षाध्यान साधना में इस केन्द्र को दर्शन-केन्द्र के नाम से सम्बोधित किया गया है। इस प्रक्रिया से शम्भु-स्वर अबाध गति से प्रवाहित होने लगता है। यदि शरीर का भाग किसी एक ओर झुक रहा हो तो शिव-स्वर की सम्यक् गति का होना असम्भव है। यह चन्द्र और सूर्य से सम्मिश्रित हो जायेगा। ऐसा स्वर अनिष्टकारक होता है। आत्म-साक्षात्कार करने में शिव-स्वर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जो साधक इसे संचालित करने में पूर्ण अभ्यस्त हैं वे ही आत्मोपलब्धि करने में सक्षम बन सकते हैं। आधुनिक युग में ऐसे सिद्ध पुरुष विरले हैं। यह ज्ञान गुरु गम्य है।

शुभाशुभ प्रश्नों का समाधान

किसी कार्य के आचरण से पूर्व अथवा पश्चात् उसके शुभाशुभ फल को जानने की अभीप्सा प्रत्येक व्यक्ति के मानस में सन्निहित रहती है। इसका सम्यक् समाधान देने में वही व्यक्ति सक्षम होता है जो स्वर शास्त्र का यथार्थ ज्ञाता होता है। इस चिन्तन के आधार पर व्यक्ति अपने मनोगत भावों को स्वर विशेषज्ञ के समक्ष निःसंकोच भाव से प्रस्तुत करता है। इस नवीन विद्या के अन्तर्गत जन-मानस का ध्यान एक विशेष बात पर आकर्षित करना अपेक्षित है।

१. यदि प्रश्न के समय उत्तरदाता का चन्द्र-स्वर चल रहा हो तथा पृथ्वी-तत्त्व और जल-तत्त्व का संयोग हो, तिथि, वार, नक्षत्र आदि की अनुकूलता हो तो निश्चित रूप से कह देना चाहिए कि कार्य की सफलता की सूचना है। उपर्युक्त स्थिति में अगर अग्नि, वायु और आकाश-तत्त्व का मेल हो तो कार्य की असफलता का परिचायक समझना चाहिए।

२. यदि प्रश्नकर्ता उत्तरदाता के दाईं ओर आकर बैठे एवं प्रश्न करे तथा पीठ पीछे से प्रश्न करे। उस समय अगर उत्तरदाता का वाम-स्वर चल रहा हो तो कार्य की सिद्धि में आशंका है। ऐसा समझना चाहिए।

३. यदि प्रश्नकर्ता व्यक्ति बायीं ओर से आकर फिर सामने खड़े होकर प्रश्न करे अथवा बायीं तरफ से प्रश्न करे तब उत्तरदाता का चन्द्र-स्वर चल रहा हो तो कार्य की निश्चित सिद्धि समझनी चाहिए।

४. यदि प्रश्नकर्ता बायीं ओर से आकर दायीं तरफ से प्रश्न करे तो कार्य का विनाश समझना चाहिए।

उपर्युक्त सभी प्रश्नोत्तर वाम नाड़ी के हैं।

अब आपको दक्षिण-नाड़ी के संदर्भ में जानना अत्यंत आवश्यक है।

१. अगर प्रश्नकर्ता दाहिनी-नाड़ी की तरफ से आकर अथवा नीचे बैठकर प्रश्न करे और बार, राशि, नक्षत्र और तत्त्व आदि सब बातों की अनुकूलता हो तथा प्रत्युत्तर देने वाले का भी दक्षिण-स्वर चल रहा हो तब कार्य की सिद्धि समझनी चाहिए। यद्यपि पृथ्वी-तत्त्व वाम-नाड़ी में सिद्धिदाता माना गया है किन्तु दक्षिण-नाड़ी के प्रवाह काल में सिद्धि प्रदान करता है।

नीचे पीछे दाहिने, स्वर सूरज का राज।

ऊंचे बाएं सामने, चन्द्र करे सब काज ॥

तत्त्वोदय में प्रश्नों की यथार्थता

यदि आकाश-तत्त्व के उदय में किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया हो तो उसे बिना पूछे कह देना चाहिए कि तुम्हारा प्रश्न मनोरंजन का था।

यदि वायु-तत्त्व में प्रश्न किया गया हो तो प्रश्न यात्रा विषयक है ।

अगर अग्नि-तत्त्व में प्रश्न किया गया हो तो प्रश्न धातु संबंधित है ।
जैसे—सोना एवं चांदी आदि का है ।

यदि प्रश्न जल-तत्त्व में किया गया हो तो प्रश्न जीव के जन्म-मरण से सम्बन्धित है ।

यदि प्रश्न पृथ्वी-तत्त्व के उदय में किया गया हो तो प्रश्न मूल से जुड़ा हुआ है । जैसे—खेती, बाड़ी, सुभिक्ष और दुर्भिक्ष से सम्बन्धित होगा ।

सफलता और असफलता की सूचना

वायु-तत्त्व में यात्रा का फल मध्यम समझना चाहिए ।

अग्नि-तत्त्व में परिश्रम से घन के लाभ का संकेत है ।

जल-तत्त्व में जीव के जन्म-मरण से सम्बन्धित प्रश्न है तथा उसमें भी मनमानी सफलता प्राप्त होने की सूचना है ।

पृथ्वी-तत्त्व के उदय में खेती बाड़ी का जो प्रश्न था वह कार्य की उत्तमता को प्रकट करता है ।

तत्त्व सम्बन्धित दोहे

जल पृथ्वी के योग में, जो कोई पूछे बात ।
शशि घर में सूरज चले, कहे कारज हो जात ॥१ ॥
पावक और आकाश में, अथवा वायु होय ।
जो कोई पूछे आयकर, शुभ कारज नहीं कोय ॥२ ॥
जब स्वर भीतर को चले, कारज पूछे कोय ।
उनसे निश्चित बल कहे, मनसा पूरण होय ॥३ ॥
जब स्वर बाहर को चले, हो न कारज सिद्ध ।
प्रत्युत्तर है योगी का, समझो कथन प्रसिद्ध ॥४ ॥



जीवन विज्ञान ग्रंथमाला में प्रकाशित पुस्तकें

| | |
|--|--|
| प्रेक्षाध्यान : प्राण-विज्ञान | -गणाधिपति तुलसी |
| प्रेक्षाध्यान : आधार-स्वरूप | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : शरीर विज्ञान | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : कायोत्सर्ग | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : श्वास-प्रेक्षा | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : लेश्या-ध्यान | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : अनुप्रेक्षा | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : सिद्धांत और प्रयोग | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : आहार विज्ञान | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : प्रयोग पद्धति | - आचार्य महाप्रज्ञ |
| प्रेक्षाध्यान : स्वास्थ्य विज्ञान, भाग १-२ | - मुनि महेन्द्र कुमार जेठाभाई झवेरी |
| प्रेक्षाध्यान : आसन-प्राणायाम | - मुनि किशनलाल |
| प्रेक्षाध्यान : यौगिक क्रियाएं | - मुनि किशनलाल |
| प्रेक्षाध्यान : एक परिचय | - मुनि किशनलाल |
| प्रेक्षाध्यान : प्राण-चिकित्सा | - साध्वी राजीमती |
| प्रेक्षाध्यान : स्वर-साधना | - साध्वी रमाकुमारी |
| प्रेक्षाध्यान : आगम और आगमेतर स्रोत | - मुनि धर्मेश |



जैन विश्व भारती
लाइन्स (राज.)